पंजीयन संख्या : 68939/98

ज्ञान तत्व

सत्यता एवं निष्पक्षता का निर्भीक पाक्षिक

DEC 2025
अंक - 23

485

ग्राम संसद अभियान 3

प्रस्तावित व्यवस्था में मेरा प्रस्ताव 4

MARGDARSHAK

प्रकाशन की तिथि - 31-12-2025 पोस्ट की तिथि - 15-01-2025

सिंहावलोकन

6 **प्रस्तावित संविधान व्यवस्था**

15 **ज़ूम चर्चा कार्यक्रम सारांश**

साथियों की कलम से....

16 **ईरान का संकट: जब अर्थव्यवस्था, लोकतंत्र और आस्था एक साथ टकराते हैं-ज्ञानेंद्रआर्य**

17 **साम, दाम, दंड, भेद और विश्व व्यवस्था अमेरिकी हस्तक्षेप की नई परिभाषा-बृजेश राय**

18 **जीवन पथ**

19 **संस्थागत समाचार**

पत्र व्यवहार का पता

बजरंग लाल अग्रवाल पोस्ट बाक्स 15, रायपुर (छ.ग.) 492021

website : margdarshak.info

प्रकाशक, संपादक व स्वामी - बजरंगलाल

9617079344

mail : Support@margdarshak.info

मुख्य कार्यालय-
ज्ञानयज्ञ परिवार आश्रम
रामानुजगंज छत्तीसगढ़ 497220
8318621282, 9630766001

लोक स्वराज अभियान
303 कृष्णा शिप्रा अजूरा अपार्टमेंट कौशांबी
गाजियाबाद 201012
9325683604, 9012432074

प्रधान संपादक
बजरंग लाल अग्रवाल
(बजरंग मुनि)

संपादक मण्डल
नरेन्द्र सिंह
संजय तिवारी
विपुल आदर्श

सहयोगी संपादक
ज्ञानेन्द्र आर्य

सदस्यता नियमन
संजय गुप्ता 872669477
कुशल दुबे 7999934238

सज्जा
लाल बाबू रवि

वितरण एवं मुद्रण सहयोग
रबीन्द्र विश्वास

ग्राम संसद अभियान

बजरंग मुनि
प्रधान संपादक

दो कथानक विचारणीय हैं—

प्रबल राक्षस किसी तरह मर ही नहीं रहा था क्योंकि कथानक के अनुसार उसके प्राण सात समुद्र पार पिंजरे में बंद तोते के गले में थे। तोते को मारते ही राक्षस की मृत्यु हो गई। रावण को राम कितना भी मारते थे, किंतु वह मरता नहीं था क्योंकि उसकी नाभि में अमृतकुंड था। विभीषण ने राम को बताया और जब नाभि पर आक्रमण हुआ तब रावण मरा। हम भारत की वर्तमान राजनीतिक और सामाजिक स्थिति का आकलन करें तो भौतिक उन्नति तेज गति से हो रही है। जीवन स्तर सबका सुधर रहा है। नैतिक पतन भी बहुत तेजी से हो रहा है। ग्यारह समस्याएँ लगातार बहुत तेजी से बढ़ रही हैं—

(1) चोरी, डकैती, लूट (2) बलात्कार (3) मिलावट, कम तौलना (4) जालसाजी, धोखाधड़ी (5) बल प्रयोग, हिंसा, आतंकवाद (6) भ्रष्टाचार (7) चरित्र पतन (8) साम्प्रदायिकता (9) जातीय कटुता (10) आर्थिक असमानता (11) श्रम शोषण

स्वतंत्रता के बाद ये सभी ग्यारह समस्याएँ लगातार बढ़ रही हैं और भविष्य में भी किसी के समाधान के कोई लक्षण नहीं दिखते। इनमें से पहली पाँच समस्याएँ तंत्र की निष्क्रियता के कारण बढ़ी हैं, तो अंतिम छह तंत्र की अतिसक्रियता के कारण बढ़ी हैं। तंत्र हमेशा लोक को गुलाम बनाकर रखना चाहता है और लोकतंत्र में लोक ही मतदाता होता है। इसलिए तंत्र मतदाताओं को 10 प्रकार के नाटकों के माध्यम से उलझाकर भ्रम में रखता है।

1.समाज में आठ आधारों पर वर्ग विभाजन करके वर्ग विद्वेष फैलाना और उसे वर्ग संघर्ष तक ले जाना।
2.समस्याओं का ऐसा समाधान खोजना कि उस समाधान से ही एक नई समस्या पैदा होती हो।
3.समस्या की प्रवृत्ति के विपरीत समाधान की प्रकृति।
4.राष्ट्र शब्द को ऊपर उठाकर समाज शब्द को नीचे गिराना।
5.वैचारिक मुद्दों पर बहस को पीछे करके भावनात्मक मुद्दों को आगे लाना।
6.समाज को शासक और शासित में बाँटकर दोनों के मनोबल में फर्क करने का संगठित प्रयास।
7.समाज द्वारा स्वयं को अपराधी मानने की भावना का विकास।
8.शासन की भूमिका बिल्लियों के बीच बंदर के समान।
9.आर्थिक असमानता वृद्धि का प्रजातांत्रिक स्वरूप।
प्राथमिकताओं के क्रम में सुरक्षा और न्याय की अपेक्षा जनकल्याणकारी कार्यों का उच्च स्थान रखना।

तंत्र से जुड़ी तीनों इकाइयाँ इन दस प्रकार के नाटकों में ईमानदारी से एकजुट होकर लगी रहती हैं, भले ही अन्य मामलों में वे आपस में क्यों न निरंतर टकराती रहें। समाज को तोड़कर रखने के लिए वर्ग विद्वेष और वर्ग संघर्ष का सहारा लिया जाता है। उसके लिए 8 आधार निश्चित हैं—धर्म,जाति, भाषा, क्षेत्रीयता, उम्र, लिंग, गरीब–अमीर, किसान–मजदूर

सभी राजनीतिक दल निरंतर आठों आधारों पर लगातार सक्रिय रहते हैं। सात आधारों पर तो समाज को तोड़ा जाता है और लिंग भेद का आधार परिवार को भी पूरी तरह तोड़ रहा है। कोई उत्तर नहीं देता कि यदि सारे देश में मुसलमान और ईसाई शून्य हो जाएँ तो ग्यारह में से दस समस्याओं पर धार्मिक एकीकरण का क्या प्रभाव होगा। कोई गरीबी–अमीरी रेखा के नाम पर समाज को तोड़ रहा है, किंतु कभी यह उत्तर नहीं मिला कि ऐसा होने से आर्थिक असमानता को छोड़कर बाकी 10 समस्याओं पर क्या प्रभाव पड़ेगा। देशभर में इन समस्याओं के समाधान के लिए आंदोलन भी बहुत होते रहे हैं। अनेक आंदोलनों में देश की करोड़ों–अरबों की संपत्ति बरबाद हो जाती है। बड़ी संख्या में लोग अपनी जान तक दे रहे हैं, किंतु समस्याएँ घटने की अपेक्षा बढ़ती ही जा रही हैं। समाज में जो भी आंदोलन या टकराव हो रहे हैं, वे भौतिक सुविधाओं के नाम पर हो रहे हैं। आज तक एक भी ऐसा आंदोलन नहीं चल रहा है जो लोक और तंत्र के बीच गुलाम और मालिक सरीखी दूरी को कम करने के लिए हो। सुविधा और स्वतंत्रता में से स्वतंत्रता की बात करने वाले कोई नहीं दिखते। सब सुविधाओं की बात करते हैं। आज इसी का परिणाम है कि लोक और तंत्र के बीच मालिक और गुलाम सरीखे संबंध बन गए हैं। तंत्र ने वोट देने का अधिकार देकर बाकी सारे अधिकार अपने पास समेट लिए हैं। लोक भिखारी और तंत्र दाता बन गया है। तंत्र ने बहुत चालाकी से संविधान को एक तरफ अपनी ढाल बनाया है तो दूसरी तरफ अपनी मुट्ठी में कैद रखा है। एक तरफ संविधान को भगवान सरीखे प्रचारित किया जाता है, तो दूसरी ओर जब चाहे तभी तंत्र बिना लोक से पूछे संविधान में मनमाना संशोधन कर देता है और वह संशोधन लोक की इच्छा के रूप में प्रचारित कर दिया जाता है। इसका अर्थ हुआ कि संविधान तंत्र को हमेशा अघोषित सुरक्षा देता है, दूसरी ओर तंत्र संविधान का मनमाना दुरुपयोग भी करता रहता है। स्पष्ट है कि भारत में संविधान का शासन है और संविधान पर तंत्र का एकाधिकार है। इसलिए जब तक संविधान तंत्र के एकाधिकार से मुक्त नहीं होता, तब तक समस्याओं के समाधान की शुरुआत नहीं हो सकती।

तंत्र ने लोक को व्यवस्था में भी सहयोगी माना है और संविधान निर्माण में भी। इस सहयोग की भावना को सहभागी की दिशा में बदलने की आवश्यकता है, अर्थात

संविधान संशोधन में लोक और तंत्र एक-दूसरे के सहभागी हों। यह स्थिति नहीं होना ही समस्याओं के समाधान की सबसे बड़ी बाधा है और इस बाधा को दूर किए बिना न रावण-रूपी तंत्र पर अंकुश लग सकता है, न ही राक्षस-रूपी तंत्र पर अंकुश लग सकता है, न ही राक्षस को पराजित किया जा सकता है। इस दिशा में संपूर्ण भारत में एक ऐसा अभिनव प्रयास हो रहा है जिसे हम ग्राम संसद अभियान के नाम से कह सकते हैं। इस अभियान के अंतर्गत पूरे देश के करीब दस लाख गाँवों और वार्डों को ग्राम संसद का नाम और स्वरूप दिलाए जाने की योजना है। ये ग्राम संसदें मिलकर 543 सदस्यों का चुनाव करेंगी, जो निर्दलीय आधार पर चुने जाएँगे। इसे संविधान सभा कहा जाएगा। संविधान सभा वर्तमान संविधान की पूरी समीक्षा करके संशोधन के प्रस्ताव तैयार करेगी तथा वर्तमान संसद को विचारार्थ देगी। यदि किसी सुझाव पर संविधान सभा और वर्तमान संसद अंतिम रूप से असहमत होंगे, तो दस लाख ग्राम संसदें उस सुझाव पर अंतिम निर्णय देंगी। मेरे विचार से यह एकमात्र प्रयास है जिस पर सब लोगों को लगना चाहिए। ग्राम संसद अभियान को देशभर में जनजागरण के रूप में फैलाने का प्रयास माँ संस्थान समूह कर रहा है। एक वर्ष में अब तक 50 जिलों में शुरुआत हो चुकी है। अन्य जिलों में भी प्रगति जारी है। आगामी 12 से 16 फरवरी 2026 को रामानुजगंज धर्मशाला मैदान में आगे की योजना पर चर्चा की जाएगी। प्रस्ताव है कि यह अभियान सिर्फ जागरण तक ही सीमित होगा, किसी आंदोलन की दिशा में नहीं जाएगा। यह कार्यक्रम किसी संगठन का नहीं होकर जनजागरण का है। इसलिए इसमें शामिल होने के लिए सब लोग स्वतंत्र हैं और आयोजकों के अनुसार देशभर के सौ लोग इसमें शामिल हो सकते हैं। जहाँ तक मेरी जानकारी है, उसके अनुसार यह एकमात्र प्रयास है जो सही दिशा में सही तरीके से आगे बढ़ रहा है। यह प्रयास सरकार के खिलाफ नहीं है, संविधान के खिलाफ भी नहीं है, बल्कि लोक और तंत्र के बीच मालिक और गुलाम के समान असीमित दूरी को घटाने की दिशा में प्रयास है। सारे देश में व्यवस्था परिवर्तन अभियान के नाम से अनेक संगठन कार्य कर रहे हैं। मैंने स्वयं सबको समझा है। मैं आश्वस्त हूँ कि व्यवस्था परिवर्तन की दिशा में सक्रिय अन्य सभी संगठन व्यवस्था में सुधार तक सीमित हैं। उन्हें व्यवस्था परिवर्तन का वास्तविक अर्थ ही नहीं मालूम। लोक और तंत्र के बीच तंत्र से सुविधाएँ लेना व्यवस्था परिवर्तन नहीं है, बल्कि व्यवस्था परिवर्तन तो यह है कि वर्तमान लोक और तंत्र के बीच अधिकारों की असीम असमानता समानता तक आए। मैं स्वयं इस कार्यक्रम में रहूँगा। मैं चाहता हूँ कि हमारे अन्य पाठक या विद्वान भी अन्य साथियों सहित कार्यक्रम में आएँ और हम आप सब मिलकर ग्राम संसद अभियान की इस योजना पर अपने सुझाव, मार्गदर्शन या सहयोग पर विचार करें। पाँच दिनों के इस कार्यक्रम में ग्राम संसद अभियान के अतिरिक्त यज्ञ, कथाएँ, प्रवचन तथा अन्य अनेक विषयों पर भी चर्चाएँ आयोजित होंगी। निवास और भोजन की व्यवस्था निःशुल्क रहेगी। चर्चा में अन्य कुछ विषय इस प्रकार भी होंगे—

पहला: भारत का संविधान तंत्र के नियंत्रण से मुक्त होना चाहिए और संविधान संशोधन के लिए तंत्र के साथ-साथ जनता द्वारा निर्वाचित संविधान सभा भी होनी चाहिए। यह कार्य शुरू भी कर दिया गया है।

दूसरा: समाज सशक्तिकरण के लिए आदर्श परिवार व्यवस्था होना आवश्यक है, क्योंकि परिवार व्यवस्था ही समाज की पहली इकाई है।

तीसरा: समाज में चिंतन-मंथन का अभाव हो गया है, गंभीर विचारकों की बहुत कमी हो गई है। इसलिए हमें राजनीति से दूर रहकर समय-समय पर राजनेताओं और सामाजिक संस्थाओं का मार्गदर्शन करना चाहिए। इसके लिए भी कम से कम 100 विचारकों का एक समूह बनना चाहिए।

इस तरह माँ संस्थान ने इस संपूर्ण व्यवस्था परिवर्तन के असंभव कार्य को संभव करने की शुरुआत की है। हमारा मुख्य कार्यालय रामानुजगंज में है, एक कार्यालय दिल्ली में भी है। मैं बजरंग मुनि रायपुर से कुछ काम देखता हूँ। मेरे विचार से वर्तमान व्यवस्था में यही एकमात्र विकल्प है और हम सब लोग इस दिशा में सक्रिय हैं।

प्रस्तावित व्यवस्था में मेरा प्रस्ताव

लोक के प्रतिनिधित्व की त्रिसदस्यीय संरचना

मेरी परिकल्पना में लोक की इच्छा तीन संस्थाओं के माध्यम से व्यक्त होती है—तंत्र , राष्ट्रपति और संविधान सभा। तंत्र में केंद्र और राष्ट्र सरकार दोनों शामिल हैं। यह संरचना लोक को एकल इकाई नहीं बल्कि तीन संतुलित स्तंभों के रूप में परिभाषित करती है। इससे निर्णय प्रक्रिया भीड़तंत्र का शिकार नहीं होती और न ही किसी एक संस्था को निरंकुश होने का अवसर मिलता है।

क) राष्ट्रपति राष्ट्रपति का चुनाव संसद और संविधान सभा के 50–50 प्रतिशत मत से होगा। यह पद केवल औपचारिक नहीं रहेगा, बल्कि विवेकाधिकार संबंधी महत्वपूर्ण शक्तियों से युक्त होगा। राष्ट्रपति लोक की सामूहिक इच्छा का संरक्षक होगा।

ख) संविधान सभा नई व्यवस्था में संविधान सभा का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके सदस्य निर्दलीय आधार पर वयस्क मताधिकार से चुने जाएंगे। इन्हें कोई वेतन या

कार्यालय नहीं मिलेगा; केवल बैठक भत्ते की व्यवस्था होगी। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि संविधान सभा सत्ता, लाभ या दलगत हितों की नहीं बल्कि विचार की सभा बने। इसके मुख्य कार्य हैं—

संसद द्वारा प्रस्तावित संविधान संशोधनों की समीक्षा या ऐसे प्रस्ताव संसद को देना

उच्च पदों—सांसद, न्यायाधीश, मंत्री, राष्ट्रपति—के वेतन-भत्तों पर निर्णय

संवैधानिक इकाइयों के बीच उत्पन्न टकरावों का समाधान

संविधान सभा संसद को निरंकुश होने से रोकने का संतुलन तंत्र बनती है। संसद और संविधान सभा के बीच यदि कोई टकराव उत्पन्न होता है तो अंतिम निर्णय जनमत संग्रह द्वारा होगा। यह लोकस्वराज का एक महत्वपूर्ण प्रावधान है।

ग) तंत्र सरकार तंत्र या सरकार को व्यवस्थापक की भूमिका दी गई है। आज की व्यवस्था में सरकार धीरे-धीरे समाज पर हावी होने लगी है। यह हस्तक्षेप व्यक्ति और परिवार दोनों की स्वतंत्रता पर प्रभाव डालता है। प्रस्तावित मॉडल में तंत्र को सीमित और स्पष्ट दायित्व दिए गए हैं।

1) **केंद्र सरकार** केंद्र सरकार का प्रमुख कार्य सुरक्षा और न्याय सुनिश्चित करना होगा। लोककल्याणकारी कार्य केंद्र के लिए अनिवार्य नहीं होंगे। वर्तमान व्यवस्था में केंद्र सरकार कल्याणकारी योजनाओं के नाम पर समाज के आंतरिक मामलों में दखल देती है, जिससे परिवार और स्थानीय निकाय कमजोर होते हैं। नई व्यवस्था इस प्रवृत्ति को रोकती है।

केंद्र सरकार के तीन अंग होंगे—न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका।

न्यायपालिका: इसकी सीमा स्पष्ट की जाएगी ताकि यह विधायिका के अधिकार क्षेत्र में अनावश्यक हस्तक्षेप न करे। पिछले चार दशकों से न्यायपालिका की सक्रियता ने कई बार संवैधानिक संतुलन को प्रभावित किया है। नई व्यवस्था इस असंतुलन को ठीक करने का प्रयास करती है।

कार्यपालिका: इसके सदस्य विधायिका या संविधान सभा द्वारा चुने जा सकते हैं। वर्तमान विसंगति, जहाँ विधायक स्वयं मंत्री बन जाते हैं, दूर की जाएगी।

विधायिका: लोकसभा और संघ सभा (वर्तमान राज्यसभा के समकक्ष) मिलकर विधायिका बनाएँगी। दोनों के अधिकार और संरचना वर्तमान मॉडल से मिलती-जुलती होगी।

2) राष्ट्र सरकार यह राज्य सरकार की तरह कार्य करेगी, पर इसका मुख्य कार्य जनकल्याणकारी योजनाओं का संचालन होगा। केंद्र के बजाय राष्ट्र और स्थानीय निकायों को कल्याण की जिम्मेदारी देना मेरी विकेंद्रीकरण पर आधारित सोच का महत्वपूर्ण भाग है।

स्थानीय निकाय: ग्राम स्वराज का आधार

जनकल्याण का वास्तविक कार्य स्थानीय निकायों के हाथ में होगा। ग्राम सभा को सर्वाधिक अधिकार दिए जाएंगे। शासन की प्रक्रिया शीर्ष से नीचे नहीं, नीचे से ऊपर चलेगी। व्यक्ति परिवार प्रमुख का चुनाव करेगा; परिवार सभा मिलकर ग्राम सभा बनाएगी; ग्राम सभा ग्राम मंडल का निर्माण करेगी; ग्राम मंडल प्रमंडल सभा का निर्माण करेगा। यह संरचना निर्णयों को स्थानीय स्तर पर ही हल करने की क्षमता देती है। मुनि जी मानते थे कि सामाजिक स्थिरता और लोकतांत्रिक अनुशासन की वास्तविक शिक्षा परिवार और ग्राम सभा में ही संभव है।

परिवार को सामाजिक और राजनीतिक इकाई बनाना

इस परिकल्पना की सबसे मौलिक विशेषता है परिवार को निर्णय की इकाई बनाना। परिवार के निर्माण का आधार संयुक्त संपत्ति और संयुक्त उत्तरदायित्व के आधार पर एक साथ रहने के लिए सहमत व्यक्तियों का समूह होगा। हर परिवार का एक प्रतिनिधि होगा। ग्राम सभा में जाने से पहले प्रतिनिधि अपने परिवार में सहमति बनाएगा। इससे ग्राम सभा संघर्ष का केंद्र नहीं, बल्कि सहयोग और संवाद का मंच बनेगी। परिवार विभाजन स्वाभाविक रूप से प्रतिनिधित्व बढ़ा देगा, जिससे किसी समूह में शक्ति का केंद्रीकरण नहीं हो पाएगा। व्यक्ति की असहमति भी सम्मानित रहेगी, क्योंकि वह किसी एक व्यक्ति की सहमति से नया परिवार स्थापित कर सकता है। आपातकाल के बाद जेपी आंदोलन हो या 2011 का लोकपाल आंदोलन—दोनों व्यवस्था परिवर्तन नहीं कर सके, क्योंकि हमारा ध्यान व्यक्तियों और सरकारों पर रहा, प्रणाली पर नहीं। आज आवश्यकता है ऐसी परिकल्पना की जो व्यक्ति, परिवार और समाज—तीनों को संतुलित रखते हुए तंत्र को नियंत्रित करे, न कि तंत्र समाज पर हावी हो। मेरे द्वारा प्रस्तुत यह वैकल्पिक मॉडल लोकस्वराज की दिशा में एक ठोस और व्यवहारिक कदम है। यह विचार केवल व्यवस्था का पुनर्लेखन नहीं, बल्कि समाज को उसकी जड़ों से पुनर्गठित करने का प्रयास है। आशा है कि यह चिंतन आगे की दिशा तय करने में सहायक होगा। आजादी के बाद भारत ने लोकतांत्रिक शासन पद्धति को अपनाया और संविधान का निर्माण किया। पिछले लगभग अस्सी वर्षों से हमारा राजनीतिक ढांचा इसी संविधान के आधार पर चलता आ रहा है। लोकतंत्र, मौलिक अधिकार और समानता जैसी अवधारणाएँ इसी व्यवस्था के साथ जुड़ी हुई हैं। समर्थक इसे सक्षम और आधुनिक मानते हैं, जबकि आलोचकों के अनुसार इसमें कई मूलभूत कमियाँ हैं। किसी भी व्यवस्था को अंतिम और त्रुटिहीन नहीं कहा जा सकता। बदलती परिस्थितियों, सामाजिक जरूरतों और प्रशासनिक चुनौतियों के अनुरूप समय-समय पर सुधार की आवश्यकता हमेशा बनी रहती है। मार्गदर्शक सामाजिक शोध संस्थान कई दशकों से भारतीय सामाजिक संरचना और व्यवस्था पर काम कर रहा है। संस्था ने जिन प्रमुख बिंदुओं पर ध्यान आकर्षित किया है, उनमें मौलिक अधिकारों की गलत परिभाषाएँ, परिवार और समाज की

उपेक्षा, संविधान सभा का अभाव, संविधान पर संसद का पूर्ण नियंत्रण, अपराध की अस्पष्ट परिभाषाएँ, राज्य का अत्यधिक सामाजिक हस्तक्षेप और तंत्र का समाज पर हावी हो जाना जैसे विषय शामिल हैं। हम सब लोगों ने अन्य साथियों के साथ मिलकर इन समस्याओं का गहन अध्ययन कर एक वैकल्पिक शासन रूपरेखा तैयार की है। यह रूपरेखा लोकस्वराज और सहभागी लोकतंत्र की भावना पर आधारित है, जहाँ लोक को सर्वोपरि माना गया है और तंत्र को "व्यवस्थापक" की भूमिका तक सीमित किया गया है।

प्रस्तावित संविधान व्यवस्था

दुनिया में व्यक्ति और समाज मौलिक इकाइयाँ मानी जाती हैं। व्यक्ति पहली इकाई होती है और समाज अंतिम। व्यक्ति प्रशासनिक इकाई से भी नियंत्रित होता है और सामाजिक इकाइयों से भी। व्यक्ति और समाज के बीच प्रशासनिक इकाई की तीन सीढ़ियाँ मानी जाती हैं। पहली है कानून, कानून से ऊपर है संसद और संसद से ऊपर है संविधान। व्यक्ति कानून से संचालित होता है, संविधान से नहीं। संविधान लोक का प्रतिनिधित्व करता है, अर्थात संविधान समाज का प्रतिनिधि माना जाता है। किसी भी व्यक्ति की स्वतंत्रता किसी कानून के आधार पर ही बाधित की जा सकती है और कानून संवैधानिक सीमाओं से हटकर नहीं बनाए जा सकते। इस बने हुए क्रम को ही दुनिया में लोकतंत्र कहा जाता है। वर्तमान भारत में इस क्रम को तोड़ दिया गया है। संसद को संविधान के आधार पर कार्य करना चाहिए था, लेकिन किसी षड्यंत्र के अंतर्गत संसद ही संविधान में मनमाने फेरबदल करने लगी। वैसे तो आंशिक रूप से यह गलती पूरी दुनिया में हो रही है, लेकिन भारत में तो तंत्र ने संविधान को अपनी मुट्ठी में कैद कर लिया है। परिणाम हुआ कि संविधान का वास्तविक स्वरूप ही बिगड़ गया। जब संविधान गड़बड़ हुआ तब कानून भी अपना महत्व खो दिए और कानून के गड़बड़ हो जाने से या तो व्यक्ति उद्दंड होने लगा या कानून का गुलाम हो गया। ये दोनों ही स्थितियाँ अच्छी नहीं कही जा सकतीं। लेकिन व्यक्ति और समाज दोनों ही इस व्यवस्था को झेलने के लिए मजबूर हैं। यह बात किसी भी स्थिति में तर्कसंगत नहीं कही जा सकती कि किसी एक ही इकाई के पास कानून का पालन करने की भी शक्ति हो तथा कानून बनाने की भी शक्ति हो तथा साथ ही साथ वही इकाई संविधान संशोधन भी करने लगे। यदि ऐसा होता है तो ऐसी व्यवस्था किसी भी परिस्थिति में लोकतंत्र नहीं कही जा सकती। यह तो अप्रत्यक्ष रूप से तानाशाही है, जिसे लोकतंत्र के नाम से समाज में प्रचारित किया जा रहा है। संविधान को गुलाम बनाने का ही यह परिणाम है कि समाज की अपनी स्वतंत्र इकाई का अस्तित्व ही समाप्त हो गया। ऐसा दिखने लगा है कि तंत्र ही सरकार है और तंत्र ही समाज है। इस समस्या पर हम लोगों ने लगभग 15 वर्षों तक देश भर में घूम-घूम कर विचार-मंथन किया और अंत में यही निष्कर्ष निकला कि संविधान संशोधन का अंतिम अधिकार उसी इकाई के पास नहीं हो सकता जो कानून भी बनाती है और क्रियान्वित भी करती है। हमारे निष्कर्ष के अनुसार संविधान संशोधन करने वाली इकाई बिल्कुल अलग होनी चाहिए। लेकिन ऐसा करने से हमें यह भी महसूस हुआ कि समाज द्वारा बनाई गई दोनों इकाइयों के बीच टकराव भी हो सकता है अथवा कोई और अव्यावहारिक निर्णय भी संभव है। इसीलिए हम लोग इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि एक संविधान सभा तो अलग बननी चाहिए, लेकिन संविधान संशोधन में वर्तमान सांसद और संविधान सभा दोनों की सहमति आवश्यक की जाए। एक प्रश्न यह भी उठा कि यदि न्यायपालिका किसी संविधान संशोधन को रद्द कर दे, तब क्या हो सकता है। हमारा यह मानना है कि जब तक संविधान के किसी प्रावधान में व्यक्ति के मौलिक अधिकारों पर आक्रमण नहीं होता, तब तक संविधान के मामले में न्यायालय कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता। और ऐसे मामले में यदि न्यायालय किसी संशोधन को रद्द भी कर देता है, तो नए तरीके से दोबारा इस तरह का प्रावधान किया जा सकता है। इस तरह हम लोगों ने संविधान संशोधन में संसद की असीम शक्ति को संविधान सभा द्वारा बैलेंस करने की कोशिश की है समाप्त नहीं । हम लोगों ने लंबे समय तक राजनेताओं को यह बात समझाने की कोशिश की और राजनेता आमतौर पर समझ भी जाते थे, लेकिन कोई भी राजनेता इस विषय पर न बोलने को तैयार हुआ, न सक्रिय हुआ, यहाँ तक कि कुछ नहीं किया भी नहीं । राजनेताओं ने तो यह तर्क भी दिया कि संसद जनता द्वारा चुने गयी हैं, इसलिए संसद पर प्रश्न उठाना गलत है। जब हमने पूछा कि जो आम चुनाव होते हैं, वे कभी भी संविधान सभा के लिए नहीं हुए हैं, वे तो सिर्फ कानून बनाने और क्रियान्वित करने के लिए आयोजित होते हैं, ऐसे सवालों पर ये नेता चुप हो जाते थे। इसलिए निराश होकर हम लोगों ने इस विषय पर जनता के बीच जाने का निर्णय किया है। हमारी टीम दो अलग-अलग दिशाओं में कार्य कर रही है। एक तरफ संविधान सभा की आवश्यकता पर जन-जागरण किया जा रहा है, दूसरी तरफ एक संविधान सभा भी बनाई जा रही है। इस प्रस्तावित संविधान सभा के लोग समय-समय पर बैठकर वर्तमान संविधान पर चिंतन करेंगे, मंथन करेंगे और निष्कर्ष निकालेंगे, तथा समाज के समक्ष चर्चा के लिए प्रस्तुत भी करेंगे। यह कार्य हमारी टीम ने पिछले 6 महीने से शुरू किया है। अब तक 50 लोग इस संविधान सभा के सदस्य बन चुके हैं तथा धीरे-धीरे यह कार्य दोनों दिशाओं में एक साथ चल रहा है।

राज्य की कूटनीति और समाज की वैचारिकता: साम्यवाद के खतरे और स्वतंत्र समाज का संकल्प

"हम समाज और राज्य को अलग-अलग समझते हैं; दोनों की व्यवस्थाएं भी भिन्न होती हैं। वर्तमान भारत में राज्य, समाज के स्वतंत्र अस्तित्व को पूर्णतः स्वीकार नहीं करता, परंतु समाज का अस्तित्व अक्षुण्ण है और अब धीरे-धीरे समाज अपने अस्तित्व को मुखर कर रहा है। भारत में हम सामाजिक स्तर पर यह भली-भांति समझते हैं कि साम्यवाद सबसे खतरनाक विचारधारा है—इस्लाम से भी अधिक। इसका कारण यह है कि साम्यवादी आमतौर पर चतुर और बौद्धिक होते हैं, जबकि सामान्य मुसलमान भावना प्रधान और कम समझ रखने वाला होता है। साम्यवाद बुद्धि-प्रधान है और इस्लाम भावना-प्रधान; समाज इस मौलिक अंतर को समझता है। हमारे देश की राजनीतिक परिस्थितियां ऐसी हो सकती हैं, जिनमें साम्यवादी देशों के साथ हमें पश्चिम की तुलना में अधिक प्रगाढ़ संबंध रखने पड़ें। मैं इस बात से सहमत हूँ कि भारत सरकार जिस प्रकार पश्चिम और साम्यवादी देशों के बीच संतुलन बना कर चल रही है, वह बिल्कुल सही मार्ग है। सरकार के लिए वर्तमान में इससे श्रेष्ठ विकल्प कोई और नहीं हो सकता। परंतु, हम समाज के लोग तानाशाही और लोकतंत्र के बीच का अंतर अच्छी तरह समझते हैं। हम सामाजिक व्यवस्था में तानाशाही का जोखिम नहीं उठा सकते। विदेश नीति के निर्धारण में भारत सरकार स्वतंत्र है, लेकिन आंतरिक व्यवस्था में हम साम्यवाद को किसी भी परिस्थिति में सशक्त नहीं होने देंगे—यह हमारा अडिग निश्चय है। हमारी स्वतंत्र समाज व्यवस्था के लिए साम्यवाद सबसे बड़ा खतरा है, इस तथ्य को हमें गहराई से समझ लेना चाहिए।"

"स्त्री-पुरुष समानता: हिंदू संस्कृति के संस्कार और मुस्लिम समाज के लिए सुधार का मार्ग"

"हमारी हिंदू संस्कृति और मुस्लिम संस्कृति में जमीन-आसमान का अंतर है। हम महिला और पुरुष के बीच कोई भेद नहीं करते। हमारे यहाँ महिला और पुरुष, दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं; दोनों की समान आवश्यकताएं होती हैं और दोनों एक-दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। भारतीय परंपरा में महिला जब तक पत्नी रहती है, तब तक पति को सम्मान देती है और जब वह माँ बन जाती है, तो उसे सर्वोच्च सम्मान प्राप्त होता है; यही हमारा रिवाज और संस्कार है। इसके विपरीत, मुस्लिम समाज में स्थिति कुछ अलग है। वहाँ अक्सर महिलाओं को उपभोग की वस्तु माना जाता है और पुरुष स्वयं को उपभोक्ता समझता है। वहाँ महिलाओं को दबाकर रखा जाता है; यहाँ तक कि धार्मिक मान्यताओं के अनुसार महिलाओं की गवाही या विश्वसनीयता को पुरुष की तुलना में आधा माना जाता है। साथ ही, वहाँ पुरुषों को तलाक का एकपक्षीय अधिकार भी प्राप्त है। यह सत्य है कि कई सौ वर्षों के मुस्लिम शासन के प्रभाव के कारण कुछ हिंदुओं में भी आंशिक रूप से इस तरह के संस्कार पैदा हुए थे, लेकिन स्वतंत्रता के बाद ऐसे संस्कार लगभग समाप्त हो गए हैं। इसके उलट, मुस्लिम समाज में आज भी वे पुरानी रूढ़ियाँ जीवित हैं। हिंदुओं ने कानून के अनुसार किए गए सामाजिक सुधारों को सहर्ष स्वीकार कर लिया, लेकिन मुस्लिम समाज ने महिला-पुरुष संबंधों में किए गए कानूनी सुधारों को उस रूप में स्वीकार नहीं किया। मैं चाहता हूँ कि मुस्लिम समाज महिला-पुरुष संबंधों के मामले में हिंदुओं से सीख ले। कुछ जागरूक मुस्लिम पुरुषों को आगे आना चाहिए और महिलाओं को समानता का अधिकार देने की पहल करनी चाहिए।"

"अभिव्यक्ति बनाम अपराध: विचार, प्रेरणा और क्रिया के दंड का नैतिक एवं विधिक विश्लेषण"

व्यक्ति मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं—भावना प्रधान और बुद्धि प्रधान। बुद्धि प्रधान लोग अक्सर भावना प्रधान लोगों को दिशा देते हैं या उन्हें संचालित करते हैं। बुद्धि प्रधान लोग मार्गदर्शन करते हैं और भावना प्रधान लोग उस पर क्रिया (अमल) करते हैं। इस प्रकार, बुद्धि प्रधान लोग केवल अपने विचार अभिव्यक्त करते हैं और समाज में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रावधान है। सिर्फ अभिव्यक्ति कोई अपराध नहीं होती, जब तक कि उसके साथ कोई अपराधिक क्रिया न जुड़ी हो; इसलिए ऐसे व्यक्ति को केवल विचारों के लिए दंडित नहीं किया जा सकता। लेकिन जो भी व्यक्ति क्रिया करता है और यदि वह क्रिया आपराधिक है, तो क्रिया करने वाला दंड का भागी होता है। आमतौर पर हिंसक अभिव्यक्ति के लिए हम केवल सामाजिक बहिष्कार कर सकते हैं, दंड नहीं दे सकते। अतः मेरा यह सुझाव है कि यदि कोई व्यक्ति गलत कार्य करने के विचार प्रस्तुत करता है, तो ऐसे लोगों का सामाजिक बहिष्कार होना चाहिए, किंतु विधिक दंड केवल क्रिया करने वालों को ही दिया जाना चाहिए। फिर भी, इस बात पर गंभीरता से विचार किया जा सकता है कि यदि कोई व्यक्ति किसी को आपराधिक कार्य के लिए उकसाता या प्रेरित करता है, और उस प्रेरणा के परिणामस्वरूप कोई अपराध घटित होता है, तो प्रेरणा देने वाले को भी अपराधी माना जाए। इस विषय पर गहन चिंतन की आवश्यकता है। फिर भी, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और आपराधिक कृत्य के बीच एक स्पष्ट अंतर तो रखा ही जाएगा।"

"न्यायपालिका का वैचारिक कायाकल्प: साम्यवादी प्रभाव से मुक्ति और राष्ट्रवादी न्यायबोध का उदय"

"न्यायपालिका दो अलग-अलग इकाइयों के समन्वय से चलती है; एक है न्यायिक प्रक्रिया, जिसे आमतौर पर संसद बनाती है, और दूसरे हैं न्यायाधीश, जो एक संवैधानिक प्रक्रिया के अंतर्गत नियुक्त होते हैं। पिछले लंबे समय तक न्यायपालिका की प्रक्रिया नेहरू परिवार के

प्रभाव में बनती रही और न्यायाधीशों के पदों पर अधिकांशतः साम्यवादी विचारों के लोग आसीन रहे, जो 'जेएनयू संस्कृति' से आते थे। वर्तमान समय में न्यायिक प्रक्रिया तो वही है जो पिछले शासनकाल में थी, लेकिन न्यायाधीश धीरे-धीरे बदलते जा रहे हैं। पहले जहाँ आमतौर पर साम्यवादी विचारधारा के लोग न्यायाधीश बनते थे, वहीं अब साम्यवाद-विरोधी और राष्ट्रवादी विचारों के लोग न्यायाधीश बनने लगे हैं। पिछले कुछ दिनों से सर्वोच्च न्यायालय में न्यायमूर्ति सूर्यकांत जी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, और उनके निर्णयों पर वामपंथियों ने शोर मचाना शुरू कर दिया है, क्योंकि वे तटस्थ फैसले ले रहे हैं। कांग्रेसी विचारधारा के लोग लगातार यह आरोप लगा रहे हैं कि न्यायपालिका में 'संघ' के लोग प्रवेश कर गए हैं। मुझे यह समझ नहीं आता कि यदि योग्यता के आधार पर लोग न्यायपालिका में जा रहे हैं, तो इसमें गलत क्या है? आपने पहले बलपूर्वक राष्ट्रवादी विचारधारा के लोगों को रोक कर रखा था और संस्थानों में कम्युनिस्टों को भर दिया था; अब यदि कम्युनिस्ट वहाँ नहीं पहुँच पा रहे हैं, तो इसमें चिल्लाने की क्या आवश्यकता है? हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने रोहिंग्या घुसपैठियों के विषय में जो निर्णय दिया, वह अत्यंत तर्कसंगत और सही था। इस निर्णय से सेवानिवृत्त हो चुके वामपंथी न्यायाधीशों और अन्य विचारकों में बेचैनी व्याप्त हो गई है। जिस विचारधारा को उन लोगों ने लंबे समय तक सींचकर जीवित रखा था, वह अब संकट में दिखाई दे रही है। उन्होंने लिखित रूप में अपना विरोध भी व्यक्त किया है। उनके इस विरोध से यह स्पष्ट हो रहा है कि हमारे देश की न्यायपालिका धीरे-धीरे साम्यवाद के प्रभाव से मुक्त हो रही है, जो कि एक सकारात्मक कदम है। अब धीरे-धीरे न्यायिक प्रक्रिया में भी बदलाव आना चाहिए और यह कार्य केवल संसद ही कर सकती है। सिर्फ न्यायाधीशों के बदलने से व्यवस्था पूरी तरह ठीक नहीं होगी, बल्कि प्रक्रिया और व्यक्तित्व—दोनों दिशाओं में एक साथ सुधार होना चाहिए। वामपंथी पूर्व न्यायाधीशों के संगठित विरोध को देखते हुए, अब समय आ गया है कि हम वर्तमान न्यायपालिका की निष्पक्षता का समर्थन करें।"

सामाजिक अनुबंध: माँ संस्थान का त्रि-इकाई शासन मॉडल और परिवार की सर्वोच्चता"

मां संस्थान ने पिछले 75 वर्षों से लगातार विचार-मंथन और प्रयोग करने के बाद नई राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था का जो प्रारूप तैयार किया है, वह प्रारूप बहुत अधिक कठिन नहीं है, लेकिन आमूल-चूल बदलाव लाने की क्षमता रखता है। नई व्यवस्था में हम परिवार को सर्वशक्तिमान अधिकार देंगे। दूसरा बदलाव हम यह करेंगे कि समाज का प्रतिनिधित्व तीन इकाइयां मिलकर करेंगी—पहली इकाई है राष्ट्रपति, दूसरी इकाई होगी संविधान सभा और तीसरी इकाई होगी तंत्र। ये तीनों मिलकर जो भी निर्णय करेंगे, वह निर्णय समाज का फैसला माना जाएगा। तीनों इकाइयां सर्वसम्मति से निर्णय लेंगी और तीनों इकाइयों में से प्रत्येक इकाई को वीटो का अधिकार प्राप्त होगा। यदि किसी विषय पर कोई इकाई वीटो कर देती है, तब वह निर्णय जनमत संग्रह से होगा, अन्यथा वह निर्णय समाज का मान लिया जाएगा। एक दूसरा बदलाव हम और करेंगे कि तंत्र के दो भाग होंगे—एक केंद्र सरकार और एक केंद्र सभा; इन दोनों के बीच कार्य विभाजन होगा। वर्तमान में जो राज्य सरकारें हैं, उनके ऊपर केंद्र सभा होगी। बस इतना बदलाव यदि हम कर देंगे, सारी व्यवस्था बदल जाएगी। कुछ और बदलाव करने की जरूरत नहीं है। वर्तमान में जिस तरह चल रहा है, इस तरह चलता रहेगा, लेकिन परिणाम बहुत ही अभूतपूर्व और परिवर्तनकारी होंगे।

"रक्षक और संरक्षक का पृथक्करण: माँ संस्थान का द्वि-आयामी प्रशासनिक ढांचा और भविष्य का भारत"

लोक अर्थात समाज का प्रतिनिधित्व तीन संस्थाएं मिलकर करेंगी—एक राष्ट्रपति, एक संविधान सभा और एक तंत्र। तंत्र के दो भाग होंगे—केंद्र सरकार और संघ सरकार। मेरे एक मित्र ने पूछा है कि केंद्र सरकार और संघ सरकार के बीच बड़ा कौन होगा? मेरे विचार से दोनों समकक्ष होंगे; दोनों के अधिकार और दायित्व बंटे हुए होंगे। केंद्र सरकार के पास सुरक्षा और न्याय होगा और संघ सभा के पास अन्य सब विभाग होंगे। केंद्र सरकार प्रत्येक व्यक्ति की रक्षक होगी और केंद्र सभा हमारी संरक्षक होगी। इस तरह रक्षक और संरक्षक का अलग-अलग दायित्व होगा। वर्तमान समय में रक्षक और संरक्षक दोनों मिलकर एक हो गए हैं, लेकिन हम रक्षक और संरक्षक दोनों को अलग-अलग करेंगे। यदि कोई भूख से मरेगा, तो उसकी जिम्मेदारी संरक्षक की होगी और यदि कोई किसी को मार देगा, उसकी जिम्मेदारी रक्षक की होगी। इन दोनों के ऊपर राष्ट्रपति होंगे और इस तरह राष्ट्रपति भी एक शक्तिशाली इकाई मानी जाएगी, वर्तमान की तरह रबर स्टैंप नहीं। इस तरह हम लोगों ने तीन भाग किए हैं। कोई भी संविधान संशोधन यदि करना होगा, तो संविधान सभा की सहमति अनिवार्य होगी। यदि संविधान सभा, राष्ट्रपति और तंत्र—तीनों ही सर्वसम्मत नहीं होते हैं, तब जनमत संग्रह होगा। इस प्रकार का बदलाव हम भारत में करेंगे और भविष्य में यह बात दुनिया तक जा सकती है।

"संसद: मैनेजर या मालिक? लोक-नियंत्रित बनाम लोक-नियुक्त लोकतंत्र का वैचारिक द्वंद्व"

दयाराम मुदगल जी एक अच्छे विचारक हैं, तर्कपूर्ण तरीके से अपनी बात रखते हैं, भाषा भी बहुत अच्छी है; मुझे उनसे चर्चा करने में प्रसन्नता होती है। उन्होंने एक प्रश्न उठाया कि जब संसद हम लोगों ने चुनी है, उस संसद को ही संविधान संशोधन का भी अधिकार क्यों नहीं होना चाहिए। मुदगल जी के अनुसार संसद संविधान संशोधन में पूरी तरह

सक्षम हो सकती है। मैं मुदगल जी से सहमत नहीं रहा, क्योंकि मेरे विचार में हम लोगों ने संसद को मैनेजर के रूप में चुना है, मालिक के रूप में नहीं। संसद कानून बना सकती है, क्रियान्वित कर सकती है, लेकिन वह कानून संविधान के अनुसार ही होगा और संविधान किसी अलग इकाई के द्वारा बनना चाहिए। संसद ही कानून बनाए और संसद ही लागू भी करे और वह जब चाहे तब संविधान भी संशोधित कर दे, तो संसद सर्वशक्तिमान हो गई। संसद हमारे अधिकारों में कटौती कर सकती है, लेकिन हम संसद के अधिकारों में कोई फेरबदल नहीं कर सकते, यह मेरे विचार से उचित नहीं है। आज भी मुदगल जी ने यह प्रश्न उठाया कि लोकतंत्र की परिभाषा गांधी के मरने के बाद बदल दी गई, वह उस समय की परिस्थितियों के अनुसार थी। मैं मुदगल जी की बात से सहमत नहीं हूं। लोकतंत्र की परिभाषा गांधी ने 'लोक नियंत्रित तंत्र' दी थी, उसे नेहरू और अंबेडकर ने मिलकर 'लोक नियुक्त तंत्र' कर दिया। ऐसी कोई स्थिति नहीं थी कि ऐसा बदल जाना आवश्यक और उचित था। मैं मुदगल जी की दोनों बातों से सहमत नहीं हूं।

"हिंदू संस्कृति का धैर्य और बदलता स्वभाव: भारतीय मुसलमानों के लिए एक ऐतिहासिक चेतावनी"

हमारी हिंदू संस्कृति में अनेक अच्छाइयां हैं। इन्हीं अच्छाइयों के कारण हम हर प्रकार के टकराव से बचते हैं। इन्हीं अच्छाइयों के कारण लाखों वर्षों से हम जीवित भी हैं। दुनिया में हमारी एकमात्र संस्कृति है जो संख्या विस्तार को कोई महत्व नहीं देती। हम किसी भी दूसरे संप्रदाय के व्यक्ति को अपने साथ जोड़ने पर विश्वास नहीं करते। संख्या बल की छीना-झपटी ही टकराव का कारण बनती है और हिंदू संस्कृति नुकसान सहकर भी ऐसे टकराव से दूर रहती है। लेकिन हमारी इस शराफत का इस्लाम ने बहुत खुला दुरुपयोग किया। मुसलमानों ने छल-बल का उपयोग करके अपनी संख्या बढ़ाने की कोशिश की और उन्हें सफलता भी मिली। भारत विभाजन इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण है, जहां मुसलमानों ने सारी सीमाएं तोड़कर भारत का विभाजन करने में सफलता प्राप्त की। स्वतंत्रता के बाद फिर मुसलमानों ने इस राह पर चलना शुरू कर दिया। फिर मुसलमानों ने बंगाल में उसी भाषा और उसी तिकड़म पर चलना शुरू कर दिया है, जो विभाजन के पहले उन लोगों ने शुरुआत की थी; लेकिन वर्तमान भारत में मुसलमान इस बात को भूल रहा है कि अब हिंदू संस्कृति में कुछ बदलाव आया है। अब हिंदू संस्कृति का एक भाग शाकाहारी न रहकर मांसाहारी भी हो रहा है और उसकी अब ईंट-पत्थर सब पचाने की ताकत पैदा हो रही है। यदि भारत का मुसलमान फिर से स्वतंत्रता के पहले के मार्ग पर चला, तो हो सकता है कि उसके अस्तित्व पर खतरा आ जाए। इसलिए मेरी भारत के मुसलमानों को सलाह है कि स्वतंत्रता के पहले की स्थिति और अब वर्तमान में नई परिस्थिति का वे तुलनात्मक अध्ययन करें। अब भारत विभाजन का स्वप्न देखना उनके लिए घातक सिद्ध होगा।

"नीयत का दर्शन और जीवन का संतोष: 87 वर्षों के सामाजिक अनुभव का निचोड़"

मुझे अपने जीवन में सक्रिय समाज व्यवस्था में रहते हुए लगभग 74 वर्ष बीत गए हैं; मैं अपनी उम्र के अंतिम पड़ाव पर हूं और संन्यास आश्रम में हूं। मैं वर्तमान समय में ऐसा महसूस करता हूं कि मैं दुनिया का सबसे अधिक सुखी और प्रसन्न व्यक्ति हूं। स्वास्थ्य 87 वर्ष की उम्र में भी सामान्य है, परिवार व्यवस्था हमारी बहुत आदर्श है, समाज व्यवस्था भी पिछले सात-आठ वर्षों से बहुत ही ठीक दिशा में जा रही है। मुझे अपने सामाजिक जीवन में कभी झूठ बोलने की जरूरत नहीं पड़ी; मैं अपने पूरे जीवन में कभी निष्पक्ष नहीं रहा। जो अच्छे लोग थे, उन लोगों का मैंने पक्ष लिया और बुरे लोगों की आलोचना की। लेकिन अच्छे लोगों का पक्ष लेने और बुरे लोगों की आलोचना में भी मैं झूठ कभी नहीं बोला, भले ही अच्छे लोगों की गलतियों को मैंने छिपा दिया और बुरे लोगों की अच्छाइयों को भी छुपा दिया। मैं कर्म से ब्राह्मण हूं और मैंने अपने जीवन में कभी सत्ता की राजनीति और संपत्ति संग्रह की इच्छा नहीं की; यदि ऐसा कोई अवसर भी आया, तो मैंने उसे अपने से दूर रखा। यही कारण है कि मुझे रात को बहुत अच्छी नींद आती है। मैंने अपने जीवन में इस बात को बहुत-बहुत महत्व दिया कि जो व्यक्ति बुरी नीयत के हैं, यदि उनकी नीतियां अच्छी भी हों, तब भी उनसे सावधान रहना चाहिए; और जो लोग अच्छी नीयत के हैं, उनकी नीतियां अगर गलत भी हों, तो उनके साथ तालमेल बिठाया जा सकता है और मैं यह महसूस करता हूं कि मेरी यह नीति बहुत सफल रही है। यही कारण है कि मैं अपने जीवन में गांधीवादी विचारों का हमेशा समर्थन किया, सुभाष चंद्र बोस, भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद की भी लगातार प्रशंसा की; लेकिन मैं नेहरू और सावरकर से हमेशा दूरी बनाकर रखा। मैं अंबेडकर को भी अच्छा आदमी नहीं मानता क्योंकि नेहरू और अंबेडकर की नीयत खराब थी, नीतियां सही हो सकती हैं। भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद, सुभाष चंद्र बोस की नीयत बहुत ठीक थी, नीतियां गलत हो सकती हैं। सावरकर की नीतियां तो गलत थीं, नीयत के बारे में अभी कुछ कहना संभव नहीं है; और गांधी की नीतियां और नीयत दोनों ही अच्छी थीं।

"नरम हिंदुत्व और लोक स्वराज: एक वैचारिक संघर्ष की विजय और भारत का नया पथ"

मैं नरम हिंदुत्व और लोक स्वराज को सभी समस्याओं के समाधान में एक महत्वपूर्ण मार्ग समझता था। हिंदुत्व के लिए मैं जनसंघ के साथ जुड़ा था और लोक स्वराज के लिए मैं विनोबा-जयप्रकाश के साथ मिलकर काम कर रहा था; लेकिन मेरा यह अनुभव रहा कि संघ सावरकरवादियों

के प्रभाव में था, जो उग्र हिंदुत्व का पक्षधर था और गांधीवादी साम्यवादियों के प्रभाव में थे, जो लोक स्वराज विरोधी था। इस तरह मेरी योजना में ये दोनों बाधक थे। आज से करीब 30 वर्ष पहले मेरा ठाकुरदास जी बंग, सिद्धराज ढड्ढा, दुर्गा प्रसाद आर्य, राम बहादुर राय आदि ऐसे लोगों से मिलना हुआ जो साम्यवादियों से दूरी बनाना चाहते थे और लोक स्वराज की दिशा में कार्य करना चाहते थे। हम लोगों ने मिलकर लगातार इस दिशा में कार्य किया, लेकिन 10 वर्षों तक लगातार सक्रियता के बाद भी सावरकरवादी और साम्यवादी हमारे ऊपर मजबूत पड़े। न हम संघ को समझा सके और न हम अन्य गांधीवादियों को समझा सके। ऐसे ही समय में नरेंद्र मोदी का गुजरात के मुख्यमंत्री के रूप में प्रवेश होता है और नरेंद्र मोदी सावरकरवादियों से दूरी बना रहे थे। जब नरेंद्र मोदी प्रधानमंत्री बन जाते हैं, तब हम लोगों की शक्ति बढ़ी और अब से 8 वर्ष पहले संघ को लोक स्वराज और नरम हिंदुत्व का महत्व समझ में आ गया। परिणाम यह हुआ कि आज नरेंद्र मोदी और मोहन भागवत के नेतृत्व में संघ लगातार लोक स्वराज और नरम हिंदुत्व की दिशा में बढ़ रहा है; साम्यवादी छाती पीट रहे हैं और सावरकरवादी धीरे-धीरे अपने विचारों में बदलाव ला रहे हैं। मैं यह कह सकता हूं कि वर्तमान समय में भारत ठीक दिशा में आगे बढ़ रहा है। नरम हिंदुत्व और लोक स्वराज ही सभी समस्याओं के समाधान में सहायक हो सकता है।

"वसुधैव कुटुंबकम का नया ढांचा: माँ संस्थान का वैश्विक त्रि-इकाई शासन और अहिंसक सत्ता परिवर्तन"

हम सिर्फ भारत की समस्याओं पर नहीं, दुनिया की समस्याओं पर सोच रहे हैं। इस संबंध में मां संस्थान लगातार चिंतन कर रहा है, प्रयोग कर रहा है और निष्कर्ष निकाल रहा है; उस निष्कर्ष के आधार पर क्रिया करने की भी तैयारी हो रही है। यह सही है कि हम यह कार्य भारत से शुरू कर रहे हैं, लेकिन हम सारी दुनिया की व्यवस्था पर चिंतित हैं। आज दुनिया भर में सरकार बदलने के लिए बल प्रयोग या हिंसा के अतिरिक्त कोई संवैधानिक मार्ग उपलब्ध नहीं है, हम इस स्थिति को बदल देंगे। हम लोग जैसा भारत में प्रयोग कर रहे हैं कि लोक अर्थात समाज का प्रतिनिधित्व तीन इकाइयां मिलकर करेंगी—एक राष्ट्रपति होगा, एक संविधान सभा होगी और एक तंत्र होगा; यही तीनों मिलकर दुनिया की व्यवस्था भी करेंगे। यदि ये तीनों मिलकर सर्वसम्मति से कोई निर्णय लेते हैं, वह निर्णय पूरे समाज का मान लिया जाएगा; लेकिन यदि इन तीनों में से कोई वीटो कर देगा, तो पूरी दुनिया के आम लोग उसके लिए मतदान करेंगे। इस तरह सरकारें बदलने में बल प्रयोग का खतरा पूरी तरह समाप्त हो जाएगा। साथ ही हम यह भी नीति बनाएंगे कि जिस तरह शरीर में थोड़ा सा खून होता है, लेकिन वह पूरे शरीर को सुरक्षा की गारंटी देता है, इस तरह हम सैनिक और पुलिस की व्यवस्था करेंगे। इस संबंध में हम लगातार चिंतन-मंथन कर रहे हैं, निष्कर्ष निकाल रहे हैं और जल्द ही समाज के सामने हम प्रस्तुत करेंगे।

"नक्सलवाद का अंत: 'व्यवस्था परिवर्तन' के भ्रम से 'लोक स्वराज' के यथार्थ तक की अनकही यात्रा"

मीडिया पूरी तरह व्यापार है, व्यापारिक तरीके से ही कार्य करता है। मीडिया व्यावसायिक तरीके से शून्य को असीमित भी बना सकता है और वह इतनी भी ताकत रखता है कि असीमित को शून्य स्थापित कर दे। मीडिया की शक्ति से आमतौर पर सब लोग प्रभावित रहते हैं, लेकिन संघ ने कभी मीडिया का सहारा नहीं लिया; यही कारण है कि संघ को स्थापित होने में बहुत अधिक समय लगा और विरोध करने के बाद भी मीडिया संघ को कमजोर नहीं कर सका। मैंने भी बचपन से मीडिया से दूरी बनाकर रखी क्योंकि मैं मीडिया की शक्ति को समझता था। लेकिन यह बात भी सच है कि चाहे बहुत देर से ही क्यों न हो, सच सामने आता ही है। यह बात सच है कि भारत के नक्सलवाद को छत्तीसगढ़ से ही विस्तार और चुनौती मिली। छत्तीसगढ़ के विस्तार में राजनेता दिग्विजय सिंह और गांधीवादी ब्रह्मदेव शर्मा का बहुत बड़ा योगदान रहा और समापन में भी गांधीवादी ठाकुरदास बंग तथा मेरा बहुत योगदान रहा। नक्सलवाद के विस्तार की रूपरेखा बस्तर से लिखी गई और समापन की रूपरेखा रामानुजगंज में लिखी गई। विस्तार के लिए 'व्यवस्था परिवर्तन' नारा दिया गया और समापन के लिए 'लोक स्वराज' का नारा दिया गया। लेकिन मीडिया के सहारे विस्तार की योजनाएं तो दुनिया को पता चलती रहीं, लेकिन मीडिया से किनारे होने के कारण रामानुजगंज से समापन की योजना समाज के सामने नहीं आ सकी। लेकिन जैसा कि देर होने के बाद भी सच सामने आता ही है, एक राष्ट्रीय समाचार एजेंसी 'हिंदुस्तान समाचार' के 'युग वार्ता' संस्करण में रामानुजगंज से नक्सलवाद के समापन की शुरुआत पर कुछ प्रकाश डाला गया है। शुरुआत बहुत अच्छी है, सच धीरे-धीरे सामने आएगा। हम इस खोज के लिए 'युग वार्ता' और 'हिंदुस्तान समाचार' को धन्यवाद देते हैं।

"वैचारिक निर्यात का नया भारत: माँ संस्थान का मार्ग और वैश्विक शांति का हिंदुत्व मॉडल"

हम पूरी दुनिया में एक नई सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था की कल्पना कर रहे हैं। हम इस नई व्यवस्था की शुरुआत भारत से करना चाहते हैं। हमारे विचार में भारत से अब विचारों का निर्यात होना चाहिए। विदेशी विचारों के आयात के माध्यम से हम दुनिया का मार्गदर्शन नहीं कर सकेंगे। विचारों का निर्यात करने के लिए गंभीर विचारकों का एक ग्रुप बनना चाहिए। हम मां संस्थान के माध्यम से निरंतर एक गंभीर विचारकों का ग्रुप तैयार करने का प्रयास

कर रहे हैं। हम इस बात से संतुष्ट हैं कि नरेंद्र मोदी और मोहन भागवत की सरकार हमें लगातार सुरक्षा और न्याय का आश्वासन दे रही है। अब भारत में 10 साल पहले वाली स्थिति नहीं है कि कम्युनिस्ट या मुस्लिम आतंकवादी विस्तारवाद के माध्यम से हमें कमजोर कर देंगे। अब साम्यवादियों और विस्तारवादी मुसलमानों के वकील, कांग्रेसी और अन्य सभी लगातार कमजोर होते जा रहे हैं। काले धन पर नियंत्रण लग रहा है, समाज को धीरे-धीरे स्वतंत्रता दी जा रही है, परिवार व्यवस्था और गांव व्यवस्था को भी जीवित किया जा रहा है, विदेशी घुसपैठिए सब निकल जा रहे हैं, अपराधों पर धीरे-धीरे लगाम लग रही है। मैं मानता हूं कि स्थिति या गति बहुत कम है, लेकिन यह गति है; यही हमारे लिए संतोषजनक है। हम भारत को हिंदू राष्ट्र नहीं बनने देंगे; भारत धर्मनिरपेक्ष है और धर्मनिरपेक्ष ही रहेगा। हम हिंदुओं को भी मुसलमानों की नकल करते हुए सांप्रदायिक नहीं बनने देंगे। हम विचारक हैं, हम दुनिया में विचारों का निर्यात करेंगे। मैं आपको आश्वासन देता हूं कि हम सब मिलकर ऐसी नीतियां बनाएंगे कि दुनिया भारत और हिंदुत्व के नेतृत्व और मार्गदर्शन में ही सुख-शांति का अनुभव करे।

"उत्पादन बनाम बिचौलिए: विकास विरोधी कानूनों का मकड़जाल और भारत के औद्योगिक पुनरुत्थान की चुनौती"

वर्तमान समय में समाज और भारत सरकार दोनों ठीक दिशा में बढ़ रहे हैं। अभी तक भारत सरकार नक्सलवाद और मुस्लिम विस्तारवाद से लगातार निपटने में सफल हो रही है। कश्मीर शांत है, मुसलमानों में भी धीरे-धीरे निराशा का भाव पैदा हो रहा है। तीसरा महत्वपूर्ण कार्य था अपराध नियंत्रण, उस दिशा में भी अच्छी शुरुआत चल रही है; लेकिन अभी तो कई काम करने बाकी हैं। एक महत्वपूर्ण कार्य यह है कि पूरे भारत में जहां भी कोई कारखाना शुरू करना होता है, तो ब्लैकमेलर वहां हर हालत में आंदोलन करते हैं। 10 साल पहले तो मीडिया, अफसर और नेताओं को ही घूस देनी पड़ती थी; अब तो गांव-गांव तक ऐसे घूसखोर सक्रिय हो गए हैं। अभी राजस्थान में कोई कारखाना शुरू करने के पहले ऐसे ही बिचौलिए सक्रिय हो गए। पूरे भारत में वर्तमान समय में कोई भी नया कारखाना खोलना असंभव कार्य बन गया है, क्योंकि बिचौलिए इतने अधिक ताकतवर हैं कि वे कारखाने का सारा पैसा लूट लेना चाहते हैं। पिछली सरकारों ने भी पांचवीं अनुसूची, छठवीं अनुसूची, पेसा कानून, जनसुनवाई, पर्यावरण सुनवाई, आदिवासी संस्कृति और पता नहीं कैसे-कैसे फालतू कानून बनाकर इन ब्लैकमेलरों को मजबूत किया। इसका यह परिणाम है कि आज चीन, अमेरिका या अन्य देशों के एजेंट भारत में इन कानूनों का सहारा लेकर किसी भी प्रकार की विकास की योजनाओं को रोक देते हैं। मैं आपको स्पष्ट बता रहा हूं कि आप भारत में एक भी ऐसा कोई कारखाना नहीं लगा सकते हैं जिसमें इन बिचौलियों को करोड़ों रुपया खिलाने के बाद भी आप आसानी से लगा सकें, चाहे वह कारखाना कोई छोटा हो या बड़ा हो। अब सरकार को चाहिए कि इस प्रकार के सभी कानून हटा दे जिससे ये बिचौलिए भूखे मर जाएं और भारत में हर तरह का उत्पादन बढ़ सके; उत्पादन बढ़ाना हमारी सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए।

"संवैधानिक संस्थाओं में संघ का प्रभाव: योग्यता, जनविश्वास और राहुल गांधी का पलायनवाद"

लोकसभा में चुनाव सुधारों पर चर्चा हुई। राहुल गांधी ने यह आरोप लगाया था कि देश की संवैधानिक संस्थाओं पर संघ के कार्यकर्ताओं को बिठाया जा रहा है। न्यायपालिका से लेकर यूनिवर्सिटी तक और चुनाव आयोग तक संघ के कार्यकर्ता बैठ रहे हैं। राहुल गांधी ने जो कहा वह बात वास्तव में सच है। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि जब सारे देश में आम नागरिक संघ के साथ जुड़ रहा है तो न्यायपालिका या अन्य स्थानों पर संघ के लोगों का आना स्वाभाविक है। जब भारत का 80% हिंदू संघ पर विश्वास करने लगा है तो प्रशासनिक स्तर पर अगर संघ के लोग 80% नहीं होंगे तो कौन होगा? क्या इन स्थानों पर भी संघ विरोधियों को कोई आरक्षण की जरूरत है? स्वाभाविक है कि सब जगह संघ के लोग ही आएंगे, इसलिए अपनी नीतियों पर फिर से विचार करने की जरूरत है कि लोग संघ के साथ क्यों अधिक जुड़ रहे हैं, क्यों लोग कांग्रेस को छोड़ रहे हैं। दूसरी चर्चा यह भी हुई कि अमित शाह के भाषण में राहुल गांधी ने कुछ प्रश्न पूछे और अमित शाह ने उनको यह कह कर डांट दिया कि मैं अपना भाषण पहले पूरा करूंगा, उसके बाद आपके प्रश्नों का उत्तर दूंगा। नाराज होकर राहुल गांधी अन्य कांग्रेसियों के साथ संसद छोड़कर चले गए क्योंकि राहुल गांधी में इतनी हिम्मत नहीं हुई कि वह पंडित नेहरू की या इंदिरा गांधी की आलोचना सुन सकें। राहुल गांधी अभी भी संसद को इंदिरा और नेहरू के साथ जोड़कर देखते हैं जबकि इंदिरा और नेहरू अब भारत की राजनीति के लिए कलंकित हो चुके हैं। राहुल गांधी को नई परिस्थितियों पर विचार करना चाहिए, संसद छोड़कर भाग जाना कोई अच्छा समाधान नहीं है।

"दल प्रतिनिधि बनाम जनप्रतिनिधि: मनीष तिवारी की मांग और संसद सदस्यों की संवैधानिक स्वतंत्रता का प्रश्न"

मनीष तिवारी एक अच्छे कांग्रेसी नेता माने जाते हैं, सोच-समझकर बोलते हैं, कम बोलते हैं, लेकिन जो कुछ भी बोलते हैं वह महत्वपूर्ण होता है। मनीष तिवारी चंडीगढ़ से लोकसभा के सदस्य भी हैं। मैं लंबे समय से यह मांग करता रहा कि संसद सदस्यों को संवैधानिक रूप से भी संसद में बोलने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। दल-बदल कानून बनाकर उनकी स्वतंत्रता पर जो रोक लगाई गई है

वह पूरी तरह से गलत है, क्योंकि संसद सदस्य जनप्रतिनिधि होता है; उसे सिर्फ दल प्रतिनिधि घोषित करके संविधान के साथ अन्याय किया गया है, लेकिन मेरी बात इतने समय से सुनी नहीं गई। अब मनीष तिवारी ने भी संसद में यह मांग की है कि जनप्रतिनिधियों को दल की तरफ से बोलने पर कोई रोक नहीं लगाई जानी चाहिए; वह जनप्रतिनिधि है और उसे संसद में बोलने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। मैं मनीष तिवारी से पूरी तरह सहमत हूं। वैसे तो मेरे विचार से पूरा दल-बदल कानून ही समाप्त होना चाहिए, लेकिन अगर किसी सांसद ने इतनी भी शुरुआत की है तो यह एक शुभ लक्षण है। कांग्रेस पार्टी और सरकार को भी इस मुद्दे पर गंभीरता से विचार करना चाहिए।

"सुरक्षा बनाम सतर्कता: जीवन रक्षा के अनिवार्य दायित्व और सरकारों की दिशाहीन प्राथमिकताएँ"

समाचार है कि बिहार के औरंगाबाद जिले में 3 अपराधियों ने लूटपाट के इरादे से एक परिवार के भाई-बहन को गोली मार दी, दोनों अस्पताल में जीने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। बंगाल में एक बहुचर्चित संदेशखाली मुकदमे में गवाही देने जा रहे गवाह को मारने की कोशिश की गई, उस गवाह के बेटे और ड्राइवर मर गए, गवाह खुद अभी जीने के लिए संघर्ष कर रहा है। एक तीसरी घटना भी पता चली कि हमारी सरकार बहुत मुस्तैदी से इस बात की चिंता कर रही है कि कफ सिरप अवैध रूप से न बिक सके, ईडी इसके लिए देशभर में छापे मार रही है। हमारे केंद्रीय गृह मंत्री इस बात से बहुत चिंतित हैं कि भारत में ड्रग्स बिक रही है, न्यायपालिका भी इस प्रकार के अपराधों में आजीवन कारावास का दंड दे रही है; भले ही हत्याओं के मुकदमे लंबे समय तक चलते रहें, भले ही वे छूट जाएं, लेकिन ड्रग्स का कोई अपराधी बचना नहीं चाहिए। मुझे यह समझ में नहीं आ रहा है कि हमारी सरकारों की प्राथमिकताएं क्या हैं और वे इतने संवेदनहीन क्यों हैं। हम सरकार से सुरक्षा की मांग करते हैं तो सरकार हमें सुरक्षा के लिए कफ सिरप से सुरक्षा देती है। यह कफ सिरप और ड्रग्स रोकना सरकार का दायित्व नहीं है, स्वैच्छिक कर्तव्य मात्र है; लेकिन निकम्मी सरकारें अपना दायित्व न समझकर बचने का प्रयास करती हैं। मेरे विचार से अब सरकार को नए तरीके से विचार करना चाहिए।

"जयप्रकाश से विनोबा तक: 'आचार्य कुल' का पुनरुद्धार और राजसत्ता पर विचारकों का अनुशासन"

मैंने अपने जीवन में जयप्रकाश और विनोबा भावे दोनों के साथ मिलकर काम किया है। मैं जयप्रकाश के मार्ग को हमेशा ठीक समझता था लेकिन धीरे-धीरे मुझे महसूस हुआ कि विनोबा भावे का मार्ग जयप्रकाश की तुलना में अधिक अच्छा था। मैं भी लंबे समय तक विनोबा भावे के मार्ग और जयप्रकाश के मार्ग इन दोनों पर एक साथ चलता रहा लेकिन जयप्रकाश के मार्ग पर चलकर मुझे निराशा हुई। जयप्रकाश राजनीतिक दलों को लोक स्वराज के लिए समझाना चाहते थे मैंने भी बहुत प्रयास किया लेकिन प्रयास असफल हुआ। विनोबा जी ने जो आचार्य कुल की शुरुआत की वह शुरुआत बहुत अच्छी थी। यह हमारी भारतीय संस्कृति और वर्ण व्यवस्था है कि राजनेताओं पर विचारकों का अनुशासन होना चाहिए। पिछले लंबे समय से विचारकों का अभाव हो गया, अनुशासन खत्म हो गया, राजनेता तानाशाह बन गए। इसका समाधान यही है कि विचारकों का एक ग्रुप बने। विनोबा भावे ने जो प्रयास किया वह बहुत अच्छा था लेकिन राजनेताओं ने उस प्रयास को कुचल दिया और विचारक कमजोर पड़े। आचार्य कुल ने उसके बाद अपनी लाइन बदल दी और वह भी जन सेवा में जुट गया। विचारकों की भूमिका लगभग खत्म हो गई। लेकिन हम लोग फिर से इस भूमिका को जीवित करने का प्रयास कर रहे हैं। एक मजबूत आचार्य कुल होना ही चाहिए भले ही उसका नाम आचार्य कुल न होकर कोई भी अन्य क्यों न हो। विचारकों की एक टीम अवश्य ही बनी चाहिए और यही टीम विनोबा भावे के लिए सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

"कानूनी विरोधाभास और सामाजिक विसंगतियां: विवाह, सहमति और दंड विधान पर एक पुनर्विचार"

मैंने फ्री सेक्स के पक्ष में लिखा कि बल प्रयोग को छोड़कर सरकार को सारे कानून हटा देने चाहिए। बानगी देखिए कि सरकार कैसे-कैसे मूर्खतापूर्ण कानून बनाती है। कुछ दिनों पहले हमारी न्यायपालिका ने यह निर्णय दिया था कि 18 वर्ष से कम उम्र की लड़कियां विवाह नहीं कर सकतीं लेकिन वे लिव-इन रिलेशनशिप में रह सकती हैं। यदि ऐसी स्थिति में कोई बच्चे भी पैदा होते हैं तो वे उनकी संतान माने जाएंगे। दूसरी तरफ आज ही समाचार आया है कि रायपुर के टिकरापारा में एक 17 वर्ष की लड़की ने 19 वर्ष के लड़के के साथ विवाह कर लिया, उसकी संतान पैदा हो गई, अब सरकार ने उनको गिरफ्तार कर लिया है। उन पर पोक्सो एक्ट के अंतर्गत मुकदमा चलेगा।

मैं यह बात साफ करना चाहता हूं अपने देश के विचारकों से कि यदि 18 वर्ष से कम उम्र में विवाह करना अपराध है तो क्या 18 वर्ष से कम उम्र में रिलेशनशिप में रहना अपराध नहीं होगा? क्या मुसलमानों को इस उम्र में छूट दी जा सकती है? हमारी सरकार इन मुद्दों पर साफ-साफ विचार क्यों नहीं रखती। आज ही मैंने सुना है कि एक कम उम्र की लड़की के साथ शारीरिक संबंध बनाने के आधार पर एक व्यक्ति को आजीवन कारावास की सजा दी गई है और यदि उस व्यक्ति ने उस लड़की की हत्या भी कर दी होती तो हत्या के मामले में भी उसे आजीवन कारावास की सजा ही होती। मैं नहीं समझता कि हत्या और बलात्कार

दोनों एक प्रकार के अपराध कैसे हो सकते हैं लेकिन हमारे तथाकथित सामाजिक चिंतक बलात्कार को हत्या से अधिक गंभीर अपराध बताने में लगे हुए हैं। हमें इन सब विषयों पर बैठकर चिंतन करना चाहिए, मंथन करना चाहिए, निष्कर्ष निकालना चाहिए; तभी समाज का उचित मार्गदर्शन हो सकेगा।

"गांधी और सावरकर: वैचारिक मतभेद बनाम चारित्रिक स्पष्टता और वर्तमान की 'नाम आधारित दुकानदारी' का अंत"

अंडमान निकोबार में अमित शाह जी और मोहन भागवत जी ने वीर सावरकर की प्रतिमा का अनावरण किया और उनकी प्रशंसा की। मैं इस बात से सहमत हूं। सावरकर ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में काफी कुछ संघर्ष किया है। जिस तरह देश में अनेक लोगों ने स्वतंत्रता संघर्ष में भाग लिया इस कैटेगरी में सावरकर भी शामिल होते हैं यद्यपि तुलनात्मक रूप से सावरकर का नाम गांधी, सुभाष चंद्र बोस, भगत सिंह आदि से नीचे और नेहरू, अंबेडकर, कम्युनिस्टों से कई गुना ऊपर माना जाता है। सावरकर और गांधी के बीच में स्वतंत्रता के संबंध में मतभेद थे। सावरकर अंग्रेज और मुसलमान दोनों को समान शत्रु समझते थे और इसलिए वे दोनों से एक साथ लड़ना चाहते थे; गांधी अंग्रेजों को मुसलमानों की तुलना में अधिक घातक मानते थे क्योंकि उनकी नजर में अंग्रेज विदेशी थे, मुसलमान भारतीय थे। इन दोनों की सोच में यह फर्क था लेकिन नेहरू की तुलना में सावरकर को कुछ अधिक सम्मान दिया जाता है क्योंकि नेहरू ने गांधीवादी विचारों को धोखा दिया, गांधी के साथ भी छल किया; सावरकर ने गांधी का प्रत्यक्ष विरोध किया कहीं उनके साथ धोखा नहीं किया, यह दोनों के बीच में फर्क था। यह बात जरूर है कि जेल में सावरकर ने अंग्रेज सरकार के साथ समझौता किया और उस समझौते का पूरा पालन किया। स्पष्ट है कि यदि आप किसी कसाई के यहां नौकरी कर लें और ईमानदारी से उसका काम करें तो आपका जीवन कलंकित नहीं माना जा सकता है। यदि सावरकर ने अंग्रेज सरकार से अपना वादा निभाया इसके लिए सावरकर को दोषी नहीं कहा जा सकता है। वर्तमान समय में सावरकरवादी और गांधीवादी जो दुकानदारी कर रहे हैं वह देश के लिए घातक है क्योंकि सावरकर और गांधी दोनों अब नहीं हैं, दोनों अपने-अपने स्थान पर ठीक रहे हैं और अब इन दोनों के नाम की दुकानदारी करना उचित नहीं है। मैं गांधी और सावरकर दोनों का प्रशंसक हूं। वर्तमान सरकार गांधी और सावरकर दोनों को उचित सम्मान देती है यह बिल्कुल ठीक है।

"वीटो का दुरुपयोग और संवैधानिक मर्यादा: नरम हिंदुत्व के उदय के बीच तंत्र की गुलामी से मुक्ति का मार्ग"

वर्तमान समय में सभी समस्याओं के समाधान का मार्ग नरम हिंदुत्व ही है और कुछ नहीं है। इसके साथ-साथ हमें संविधान को तंत्र की गुलामी से मुक्त करना भी होगा, हम दोनों दिशाओं में एक साथ बढ़ रहे हैं। वर्तमान समय में जो संविधान है, उस संविधान में मनमाने संशोधन करके राजनेताओं ने उसको कूड़ा-कचरा बना दिया है; उन संशोधनों पर भी हम दोबारा विचार करेंगे। आप जरा सोचिए कि भारत के संविधान में न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका—इन तीनों को समान अधिकार दिए गए थे। तीनों को ही एक-दूसरे के साथ तालमेल बनाने और विशेष परिस्थिति में उद्दंड इकाई को नियंत्रित करने के लिए विशेष परिस्थिति में वीटो अधिकार दिया गया था। वर्तमान समय में तंत्र के तीनों ही भाग वीटो का दुरुपयोग कर रहे हैं। अभी आपने सुना होगा कि तमिलनाडु में किसी न्यायाधीश के निर्णय के खिलाफ संसद में हिंदू-विरोधी नेताओं ने महाभियोग लाने का निर्णय किया है। अरे भाई, यह महाभियोग वीटो का अधिकार है, आपातकाल में उपयोग किया जाता है; उसको आपने इस तरह बार-बार उपयोग करना शुरू कर दिया। अभी साल भर पहले ही आपने उपराष्ट्रपति के खिलाफ वीटो का उपयोग किया, आप हर मामले में वीटो की धमकी देते हैं; न्यायपालिका को इस तरह महाभियोग के अधिकार से डराना चाहते हैं, यह बात अच्छी नहीं है। जब भारत का मार्ग नरम हिंदुत्व की तरफ बढ़ चुका है तो आप उस तूफान को रोक नहीं सकेंगे। मेरे विचार से हमारी विधायिका ने मुसलमानों को खुश करने के लिए जो वीटो का उपयोग किया है, उसकी देशभर में निंदा होनी चाहिए। मैं इस बात को भी महसूस करता हूं कि हमारी न्यायपालिका भी आजकल बहुत अधिक वीटो का उपयोग कर रही है; न्यायपालिका को भी इस वीटो के उपयोग से बचना चाहिए।

"नरम हिंदुत्व बनाम वैचारिक विस्तारवाद: नेहरूवादी 'हिंदू-मुक्त' षड्यंत्र और माँ संस्थान का सुरक्षा चक्र"

नरम हिंदुत्व का मार्ग ही हमें व्यवस्था परिवर्तन में सफलता दिला सकता है। हमने यह मार्ग इसलिए चुना कि भारत ही इस कार्य की शुरुआत कर सकता है और हिंदुत्व में 10% उग्रवाद है, 90% शांतिप्रिय लोग हैं, आतंकवाद शून्य है। इस्लाम में 80% उग्रवाद है, 10% आतंकवाद है, 10% लोग ही शांतिप्रिय हो सकते हैं; ऐसी स्थिति में हम हिंदुत्व को तो साफ कर सकते हैं लेकिन इस्लाम को साफ करना लगभग असंभव है क्योंकि हिंदुत्व में उग्रवाद सिर्फ 10% है और हम उसे ठीक कर लेंगे लेकिन इस्लाम का 90% हमसे ठीक नहीं हो पाएगा। एक दूसरी सबसे बड़ी समस्या यह है कि पंडित नेहरू ने हिंदुत्व को समाप्त करने के लिए सारी तिकड़म की। पंडित नेहरू ने मुसलमानों को प्रोत्साहित किया, उन्होंने हिंदू और मुसलमान में बराबरी का प्रयास किया जिससे मुसलमानों की संख्या और हिंदुओं की संख्या बराबर हो जाए। उन्होंने हिंदुओं को दूसरे दर्जे

का नागरिक बनाने की कोशिश की। परिणाम आपने देखा होगा कि भारत में एक नए विभाजन की आवाज उठनी शुरू हो गई। आज भी नेहरू परिवार का हर सदस्य लगातार यह कोशिश कर रहा है कि दुनिया हिंदुओं से मुक्त हो जाए और यह कार्य भारत से ही शुरू हो, इसलिए हर कांग्रेसी अल्पसंख्यकों को प्रोत्साहित करता है यहाँ तक कि विदेशी मुसलमानों को भी भारत में बसाने की पूरी-पूरी कोशिश करता है। हम लोगों का यह कर्तव्य है कि हम इस तरह के उग्रवाद का खुलकर विरोध करें। यही कारण है कि हम लोगों ने नरम हिंदुत्व को प्रोत्साहित करना शुरू किया है। हमारा यह प्रयत्न रहेगा कि नेहरू परिवार हिंदू-मुक्त दुनिया की अपनी योजना में कभी सफल न हो सके बल्कि दुनिया में नरम हिंदुत्व की विचारधारा लगातार बढ़ती रहे।

"नेहरूवादी 'हिंदू-विहीन' एजेंडे का अंत: विदेशी घुसपैठ, नक्सलवाद और बदलती चुनावी हकीकत"

पंडित नेहरू कई प्रकार की तिकड़म करके हिंदू-मुक्त भारत बनाना चाहते थे। मैंने स्वयं अनुभव किया है कि 10 साल पहले भारत का कोई भी व्यक्ति अपने को हिंदू कहने से डरता था क्योंकि हिंदू कहना खतरे से खाली नहीं था। देश के प्रधानमंत्री खुलेआम घोषणा कर रहे थे कि भारत की संपूर्ण व्यवस्था पर मुसलमानों का पहला अधिकार है। लेकिन पंडित नेहरू की योजना सिर्फ मुसलमानों के लिए नहीं थी, वे मुसलमान, ईसाइयों, साम्यवादियों सबको प्रसाद देकर हिंदुओं को अल्पसंख्यक बनाना चाहते थे। इसी मार्ग पर इंदिरा चलती रहीं और इसी मार्ग पर लगातार सोनिया गांधी भी चलती रहीं, जो अभी तक निरंतर जारी है। लेकिन पिछले 10 वर्षों से अब उनके इस महा-अभियान में बाधा पैदा हो गई है क्योंकि अब हिंदुओं ने समाप्त होने के पहले राजनीतिक तरीके से मुकाबला करना शुरू कर दिया है। नेहरू सरकार ने विदेशी मुसलमानों को भी भारत में बुला-बुलाकर उन्हें मतदाता बनाया, उन्हें बड़े-बड़े पद दिए; दूसरी तरफ नक्सलवादियों को आगे बढ़ाया और उन्हें भी हर प्रकार की सुरक्षा दी। इसी प्रकार की हिंसक गतिविधियों की मदद से ये लोग चुनाव जीते थे, लेकिन अब यह भेद खुल चुका है। अब नक्सलवादी मारे जा रहे हैं, विदेशी मुसलमान भारत से निकाले जा रहे हैं, मतदाता सूचियां सुधारी जा रही हैं और नेहरू परिवार छाती पीट रहा है; क्योंकि जिसने भारत को हिंदू-विहीन बनाने का सोचा था, वही भारत उसी के सामने विदेशी मुसलमानों को बाहर निकाल रहा है। अब राहुल गांधी को यह साफ दिख रहा है कि उनके सारे मददगार बड़ी संख्या में देश से निकल जा रहे हैं और चुनाव में इसका बहुत बुरा असर होगा; इसीलिए राहुल गांधी रामलीला मैदान में आज जोर-जोर से चिल्ला रहे थे, जिसे कोई देश में सुनने वाला नहीं। देश के लोग उनकी चिल्लाहट से अब प्रसन्न होते हैं।

"तानाशाही और लोकतंत्र का मध्य मार्ग: माँ संस्थान का 'परिवार मॉडल' और नई चुनाव प्रणाली"

नई समाज व्यवस्था लोकतांत्रिक रहे अथवा उसमें कोई सुधार और संशोधन करने की जरूरत है, यह एक गंभीर विषय है। हमारी चुनाव प्रणाली भी परफेक्ट नहीं मानी जा सकती क्योंकि हमारी चुनाव प्रणाली लोकतांत्रिक है लेकिन यह चुनाव प्रणाली दो गुट बना देती है। आज भारतीय जनता पार्टी ने जिस तरीके से नई चुनाव प्रणाली का प्रदर्शन किया, अपने राष्ट्रीय कार्यकारी अध्यक्ष का और उत्तर प्रदेश के अध्यक्ष का चुनाव किया, वह चुनाव प्रणाली भी विचारणीय हो सकती है। मैने बहुत पहले ही इस चुनाव प्रणाली का प्रयोग किया था; मैंने अपने परिवार में दो पद बनाए थे—एक परिवार प्रमुख और एक मुखिया। परिवार प्रमुख परिवार का सबसे अधिक उम्र का तथा सबसे अधिक सम्मानित व्यक्ति होगा, वह परिवार के मुखिया की नियुक्ति करेगा। मुखिया की भूमिका प्रधानमंत्री के समान होगी और प्रमुख की भूमिका राष्ट्रपति के समान होगी। अंतिम निर्णय परिवार बैठकर करेगा। इस तरह कोई एक नया तरीका सोचा जा सकता है जिसके आधार पर हम नए तरह की चुनाव प्रणाली बना सकें। क्योंकि तानाशाही भी बहुत घातक होती है और लोकतंत्र का वर्तमान स्वरूप भी समाधान नहीं कर पा रहा है; हमें इन दोनों के विकल्प के रूप में किसी नई प्रणाली पर सोचना चाहिए। मैं उस पर लगातार सोच रहा हूं और प्रयोग कर रहा हूं।

"वैश्विक आतंकवाद की जड़ें: मजहबी शिक्षा का संकट और शांतिपूर्ण विश्व के लिए वैचारिक शुद्धि का मार्ग"

ऑस्ट्रेलिया में यहूदियों पर जो अंधाधुंध गोली चलाकर 15 लोगों की हत्या की गई और अनेक लोग घायल हो गए, इस गोली चालन में भी दो मुसलमान बाप-बेटों का ही हाथ बताया जा रहा है। आमतौर पर दुनिया में इस तरह की अंधाधुंध हत्याओं में मुसलमानों का ही हाथ पाया जाता है, इसलिए दुनिया के मुसलमानों को इस बात पर गंभीरता से सोचना चाहिए कि उन्हें इस तरह की शिक्षा कहां से प्राप्त हो रही है जिस शिक्षा के माध्यम से वे हिंसक हो जा रहे हैं। दुनिया की अन्य संस्कृतियों के लोग टारगेट को हिंसा करते हैं लेकिन मुसलमान सभी दूसरे धर्म के लोगों को अपना टारगेट मानता है, किसी व्यक्ति को नहीं। यह कार्य भी कोई व्यवस्था नहीं करती बल्कि हर मुसलमान इस प्रकार दूसरे धर्म के लोगों को मारना अपना कर्तव्य समझता है। स्पष्ट है कि यह शिक्षा उन्हें धर्मगुरुओं से ही मिल रही है क्योंकि मुसलमान आमतौर पर नासमझ होता है, वह अपने धर्मगुरुओं के इशारे पर चलता है और धर्मगुरु भी किसी किताब से ही संचालित होते हैं। हम इस प्रकार के हत्यारे

को राज्य द्वारा दंड दिलवाएंगे यह बात सही है, लेकिन हम सब लोगों का भी यह कर्तव्य है कि हम दो दिशाओं में सक्रिय हों। पहली, हम मुसलमानों से सतर्क रहें; दूसरा कि हम मुसलमानों को उस शिक्षा से दूर करें जहां से उन्हें इस तरह की गंदी शिक्षा प्राप्त होती है। हम समाज के लोग हैं, हमारा कार्य अलग है, सरकार का कार्य अलग है। सरकार अपना कार्य कर रही है, हमें भी अपना कार्य करना चाहिए। इस तरह की गंदी विचारधारा दुनिया में जीवित रहे यह हमारी असफलता है। आइए, हम आप मिलकर इस विषय पर गंभीरता से विचार करें कि दुनिया को ऐसी शिक्षा से कैसे मुक्त कराया जा सकता है।

"समाधान नहीं, समस्या है वर्तमान राजनीति: एक राजनीति-निरपेक्ष समाज व्यवस्था का नया उद्घोष"

वर्तमान समय में हमारी सभी समस्याओं का मुख्य कारण राजनीतिक व्यवस्था बन गई है। राजनीतिक व्यवस्था के कारण ही समाज में अनेक समस्याएं पैदा हो रही हैं। अगर राजनेताओं के व्यक्तिगत आचरण पर गंभीरता से विचार किया जाए तो 99% राजनेता कहीं न कहीं भ्रष्ट होते हैं। उनमें भी 60-70% अपने परिवार के लिए भ्रष्टाचार करते हैं और 20-30% ऐसे होते हैं जो पार्टी के लिए भ्रष्टाचार करते हैं। दूसरी बात कि राजनीतिक नेता अपनी राजनीतिक विचारधारा के प्रति भी ईमानदार नहीं होते; लगभग 80% राजनेता कभी भी अपनी राजनीतिक निष्ठा बदलने के लिए तैयार रहते हैं, उनकी विश्वसनीयता भी संदिग्ध है। राजनीतिक नेता चरित्र के मामले में भी 60-70% अन्य लोगों की तुलना में अधिक गिरे हुए होते हैं। नैतिकता का मामला भी उनका बहुत नीचे है। मैंने जो ये आंकड़े बताए हैं वे अपनी तरफ से नहीं बताए हैं बल्कि ये सारे आंकड़े राजनीतिक दलों ने ही एक-दूसरे के विरुद्ध बताए हैं। भारत का हर राजनेता दूसरी पार्टी के राजनेताओं को चोर कहता है, चरित्रहीन कहता है, अविश्वसनीय कहता है, सब कुछ कहता है और उनके कहे हुए के आधार पर ही मैं आपको यह अपना अनुभव बता रहा हूं। इसलिए राजनेता अब हमारी समस्याओं का समाधान नहीं बल्कि कारण बनता जा रहा है। ऐसी स्थिति में अब हमें राजनीति-निरपेक्ष समाज व्यवस्था को आगे बढ़ाना चाहिए और इसकी शुरुआत यहीं से हो सकती है कि हम राजनेताओं पर और राजनीतिक व्यवस्था पर अपनी निर्भरता खत्म करें। हम एक नई समाज व्यवस्था का उद्घोष करें।

"संकट में विस्तारवाद: समान नागरिक संहिता और भारतीय मुसलमानों के लिए अस्तित्व रक्षा का एकमात्र मार्ग"

मैं सिर्फ समस्या नहीं बताता, उसका समाधान भी बताता हूं। दुनिया में और विशेषकर भारत में मुस्लिम विचारधारा और विस्तारवाद संकट में आ चुका है। उसे या तो अपनी नीतियां बदलनी होंगी या उन्हें खुद के पास भेज दिया जाए और वे वहीं जाकर रहें, दुनिया को परेशान न करें। लेकिन मेरे विचार से, मैं भारत के मुसलमानों को सलाह दूंगा कि वे हिंदुओं के साथ मिलकर उनसे समझदारी सीखें; क्योंकि न उन्हें मदरसे समझदारी बता सकते हैं, न उन्हें कुरान से मिल सकती है। उन्हें यदि समझदारी चाहिए तो हिंदुओं के धर्मग्रंथ दे सकते हैं, हिंदू उन्हें बता सकते हैं। वे मुसलमान रहें, नमाज पढ़ें, सारे धार्मिक कार्य अपने तरीके से करें, लेकिन वे समझदारी देश के हिंदुओं से सीखें। मेरे विचार से मुसलमानों के लिए यह बहुत अच्छा होगा, अन्यथा उनके दिन बहुत बुरे आने वाले हैं। भारत में रहकर वे संदेह की नजर से देखे जाएंगे और पाकिस्तान, बांग्लादेश, अफगानिस्तान, म्यांमार उन्हें स्वीकार नहीं करेंगे क्योंकि जो खुद भूखा है वह दूसरों को साथ लेगा ही नहीं। इसलिए मेरा एक सुझाव है कि भारत का मुसलमान तत्काल समान नागरिक संहिता को स्वीकार कर ले। सारा झगड़ा खत्म हो जाएगा, कोई झगड़ा नहीं रहेगा। सिर्फ एक मंत्र है—कॉमन सिविल कोड। मुसलमान विपक्षी दलों के बहकावे से बाहर आकर कॉमन सिविल कोड के लिए आगे आ जाए।

ज़ूम चर्चा कार्यक्रम का सारांश

विषय: सुभाष चंद्र बोस

सुभाष चंद्र बोस का नाम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अग्रणी योद्धाओं में लिया जाता है।आज़ाद हिंद फ़ौज की स्थापना कर नेताजी ने अंग्रेजों के खिलाफ सशस्त्र विद्रोह किया। इस विद्रोह के फलस्वरूप अंग्रेजी सेना को अपार क्षति पहुँची। इसी से प्रेरित होकर मुंबई विद्रोह हुआ जिसने भारत में ब्रिटिश शासन की नींव हिला दी। चर्चा के दौरान यह कहा गया कि सुभाष बाबू की नीयत अच्छी थी। उनका त्याग अप्रतिम था। एक बात विचारणीय है कि इन सभी बातों के बावजूद उनकी नीतियां गलत थीं। हमारे मार्गदर्शक बजरंग मुनि जी ने अपनी बात रखते हुए कहा कि जापान और जर्मनी से समझौता करना कहीं से भी जायज नहीं था। अपनी बात को आगेबढ़ाते हुए उन्होंने यह भी कहा कि सुभाष चंद्र बोस तानाशाही के पक्षधर थे जो सही नहीं था। उन्होंने तथ्यों पर जोर देते हुए कहा कि जापानियों ने अंडमान निकोबार में भारतीयों पर बेइंतहा जुल्म किया। जापानियों ने भारतीय सेना के साथ दगाबाजी की जिसके फलस्वरूप आज़ाद हिंद फ़ौज के हजारों सैनिक मारे गए। क्रांतिकारियों का त्याग अतुलनीय था। उनकी नीयत अच्छी थी लेकिन मार्ग गलत था। चर्चा के

दौरान परस्पर विरोधी बातें कही गईं। किसी ने सुभाष चंद्र बोस और क्रांतिकारियों के कार्यों और नीतियों की सराहना की। दूसरी ओर कुछ लोगों ने गांधी की सत्य-अहिंसा की नीति को सही ठहराया।

विषय: राम मनोहर लोहिया और उनके विचार

चर्चा की शुरुआत राम मनोहर लोहिया के जीवन और उनके विचारोंके साथ हुई। लोहिया समाजवादी विचारधारा से प्रेरित थे। स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी भूमिका सराहनीय रही है। 1942 में 'भारत छोड़ो आंदोलन' के समय भूमिगत होकर उन्होंने आंदोलन को आगे बढ़ाया। उन्होंने 'कांग्रेस रेडियो' की शुरुआत की जिसके माध्यम से आंदोलनकारियों के विचार आम जनता तक पहुँचते थे। लोहिया का गोवा मुक्ति संग्राम में भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। 1946 में उन्होंने गोवा में पुर्तगाली शासन के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद की। उन्होंने देश के बाकी नेताओं का ध्यान पुर्तगाल की ओर आकृष्ट कराया। अगर उनके विचारों की बात की जाए तो वह 'चौखंभा शासन'की बात करते थे। इसके अंतर्गत शासन को चार भागों में बाँटा गया था। इसके अलावा उन्होंने 'सप्तक्रांति'की बात की जो सात लक्ष्यों या उद्देश्यों पर निर्भर थी। राम मनोहर लोहिया राम, कृष्ण और शिव को भारतीय संस्कृति और सभ्यता का प्रेरणा स्रोत मानते थे। उनके अनुसार राम, कृष्ण और शिव काल्पनिक नहीं बल्कि वास्तविक चरित्र थे। हमारे मार्गदर्शक बजरंग मुनि जी ने चर्चा को विस्तार देते हुए गांधी के सिद्धांतों और उनके शासन संबंधी आदर्शों पर बात की। गांधी के अनुसार सत्ता का विकेंद्रीकरण होना चाहिए। अधिकतम अधिकार ग्राम सभा के पास होने चाहिए। इसके अलावा उन्होंने अटल बिहारी वाजपेयी के बारे में अपने विचार रखे। उनके अनुसार अटल बिहारी वाजपेयी व्यावहारिक व्यक्ति थे और इसी के दम पर उन्होंने सरकार चलाई। उनमें एक राजनेता के सभी गुण मौजूद थे। अगर वाजपेयी और मोरारजी की बात करें तो हम पाते हैं कि वाजपेयी की तुलना में मोरारजी अधिक सिद्धांतवादी थे। उन्होंने एक साथ एक घटना का जिक्र करते हुए कहा कि मोरारजी की सरकार गिरने वाली थी, इसके बावजूद भी वे विचलित नहीं हुए।

विषय: अन्ना आंदोलन

लोकतंत्र को लोक स्वराज की दिशा में अग्रसर होना चाहिए। लोक स्वराज में लोक मजबूत और मालिक होता है जबकि लोकतंत्र जब सत्ता के केंद्रीकरण की तरफ झुकता है तो तंत्र मजबूत और मालिक बन जाता है। वर्तमान में संसदीय लोकतंत्र विकृत लोकतंत्र बनकर रह गया है। अन्ना आंदोलन से देश को बहुत उम्मीदें थीं। साल 2011 में लोकपाल के गठन और काले धन के खिलाफ देश भर में अन्ना हजारे ने जन आंदोलन का नेतृत्व किया। बाबा रामदेव ने भी अन्ना के साथ आंदोलन को गति दी। दुर्भाग्य से इस आंदोलन को धूर्त और चालाक राजनेताओं ने असफल कर दिया। इसी आंदोलन से अरविंद केजरीवाल जैसे नेता का जन्म हुआ जिसने भ्रष्टाचार के नाम पर अपनी राजनीति की। इस आंदोलन का भी वही हश्र हुआ जो जेपी की संपूर्ण क्रांति का हुआ था। व्यवस्था परिवर्तन के उद्देश्य से शुरू हुआ आंदोलन सत्ता परिवर्तन तक सीमित रह गया। दूसरे शब्दों में कहें तो राजनेताओं ने आम जनता को धोखा दिया। अरविंद केजरीवाल ने भ्रष्टाचार उन्मूलन के नाम पर अपने आपको राजनीति में स्थापित किया। दुर्भाग्य है कि वही व्यक्ति आज भ्रष्टाचार के आरोप में जेल में है। आज साबित हो गया कि केजरीवाल भारतीय राजनीति का रंगा सियार है।

साथियों की कलम से....

ईरान का संकट: जब अर्थव्यवस्था, लोकतंत्र और आस्था एक साथ टकराते हैं - ज्ञानेन्द्र आर्य

ईरान आज केवल एक आर्थिक संकट से नहीं गुजर रहा, बल्कि वह अपने राजनीतिक ढांचे, वैचारिक पहचान और सामाजिक अनुबंध के सबसे कठिन इम्तिहान के दौर में खड़ा है। 2026 की शुरुआत में ईरानी रियाल का डॉलर के मुकाबले 1,35,000 टोमन से नीचे गिरना सिर्फ मुद्रा अवमूल्यन की खबर नहीं है, यह उस व्यवस्था की विफलता का संकेत है जो चार दशक से "इस्लामी क्रांति" के नाम पर जनता से लगातार त्याग की मांग करती रही है। दिसंबर 2025 में 42.2 प्रतिशत तक पहुंची मुद्रास्फीति ने आम ईरानी के जीवन को असहनीय बना दिया है। भोजन, ईंधन, दवाइयां और आवास—सब कुछ आम आदमी की पहुंच से बाहर होता जा रहा है। इस आर्थिक संकट की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि यह उस देश में घटित हो रहा है जो तेल और गैस जैसे रणनीतिक संसाधनों से भरपूर है। फिर भी प्रतिबंधों, गलत नीतियों और वैचारिक जड़ता ने ईरान को आर्थिक आत्मघात की दिशा में धकेल दिया है।

1.आर्थिक मंदी का भूत और टूटता सामाजिक धैर्य

विश्व बैंक का अनुमान है कि 2026 में ईरान की अर्थव्यवस्था 2.8 प्रतिशत तक संकुचित होगी, यह इस बात को रेखांकित करता है कि समस्या अस्थायी नहीं, संरचनात्मक है। क्षेत्र के अन्य देश जहां धीरे-धीरे स्थिरता और विकास की ओर बढ़ रहे हैं, वहीं ईरान पीछे छूटता जा रहा है। अमेरिकी प्रतिबंधों ने स्थिति को कठिन बनाया है, लेकिन यह मान लेना कि सारी जिम्मेदारी बाहरी शक्तियों की है, ईरानी सत्ताधीशों की अपनी असफलताओं पर पर्दा डालना होगा। सब्सिडी में कटौती, ईंधन कीमतों में बढ़ोतरी

और रोजगार के अवसरों की कमी ने जनता के धैर्य की सीमा तोड़ दी है। तेहरान से लेकर छोटे शहरों और कस्बों तक फैले विरोध प्रदर्शन इस बात का प्रमाण हैं कि यह केवल शहरी मध्यम वर्ग का असंतोष नहीं, बल्कि व्यापक जनाक्रोश है। "न गाजा, न लेबनान, मेरा जीवन ईरान" जैसे नारे यह साफ कर देते हैं कि जनता अब वैचारिक विदेश नीति की कीमत अपने जीवन स्तर से चुकाने को तैयार नहीं है।

2.सुधारवादी सरकार, लेकिन कट्टरपंथी शिकंजा

राष्ट्रपति मसूद पेजेश्कियन की सरकार को सत्ता में आने के समय एक सुधारवादी विकल्प के रूप में देखा गया था। न्यूक्लियर डील के पुनरुद्धार, पश्चिम के साथ रिश्तों में संतुलन, एकल विनिमय दर और सब्सिडी सुधार जैसे प्रस्तावों में यह उम्मीद झलकती थी कि ईरान धीरे-धीरे व्यावहारिक राजनीति की ओर लौट सकता है। लेकिन व्यवहार में यह सरकार एक ऐसे तंत्र में फंसी हुई है, जहां वास्तविक शक्ति निर्वाचित संस्थाओं के बजाय वैचारिक संरक्षकों के हाथों में है। मार्च 2025 में अर्थव्यवस्था मंत्री हेम्मती का महाभियोग केवल एक मंत्री को हटाने की कार्रवाई नहीं थी, बल्कि यह संकेत था कि संसद में बैठे कट्टरपंथी गुट सुधारों को आगे बढ़ने नहीं देंगे। कृषि, उद्योग और अन्य मंत्रालयों पर लगातार दबाव डालकर पूरे कैबिनेट को अस्थिर बनाए रखना एक सुनियोजित रणनीति का हिस्सा है। हर सुधार को "क्रांतिकारी सिद्धांतों से विश्वासघात" करार देकर रोक देना, ईरान को स्थायी जड़ता में धकेल रहा है।

3.सर्वोच्च नेता और धार्मिक अधिरचना की दीवार

ईरान की सबसे बड़ी समस्या उसका वह राजनीतिक-धार्मिक ढांचा है, जिसमें अंतिम निर्णय का अधिकार जनता या संसद के पास नहीं, बल्कि सर्वोच्च नेता के पास है। 'वेलायत-ए-फकीह' का सिद्धांत व्यवहार में लोकतांत्रिक जवाबदेही को निष्प्रभावी बना देता है। राष्ट्रपति चाहे जितने भी सुधारवादी क्यों न हों, सुरक्षा तंत्र, न्याय व्यवस्था और आंतरिक मंत्रालय जैसे निर्णायक क्षेत्र उनके नियंत्रण से बाहर रहते हैं। उत्तराधिकार को लेकर चल रही अटकलें—चाहे वह मोज्तबा खामेनेई हों या खुमैनी परिवार से कोई और—अनिश्चितता को और गहरा करती हैं। इस पूरी प्रक्रिया में जनता पूरी तरह हाशिये पर है। शरिया-आधारित कठोर नीतियां न केवल सामाजिक जीवन को नियंत्रित करती हैं, बल्कि राजनीतिक सुधारों को भी लगभग असंभव बना देती हैं।

4.शरिया-आधारित दमन और सामाजिक विद्रोह

महसा अमीनी की मौत के बाद शुरू हुआ विरोध अब केवल हिजाब या नैतिक पुलिस तक सीमित नहीं है। यह एक व्यापक सांस्कृतिक और वैचारिक विद्रोह का रूप ले चुका है। महिलाएं सार्वजनिक रूप से हिजाब उतारकर सिर्फ एक ड्रेस कोड को चुनौती नहीं दे रहीं, बल्कि उस पूरी व्यवस्था पर सवाल उठा रही हैं जो उनके जीवन पर नियंत्रण रखना चाहती है। सर्वेक्षणों में सामने आ रहा तथ्य कि बड़ी संख्या में ईरानी नागरिक धर्म और राज्य के अलग होने के पक्ष में हैं, यह बताता है कि समाज और सत्ता के बीच वैचारिक खाई गहरी हो चुकी है। यह आंदोलन किसी बाहरी शक्ति द्वारा संचालित नहीं, बल्कि भीतर से उपजा हुआ असंतोष है।

5.लोकतंत्र का दम घुटता हुआ स्वर

ईरान को "नॉट फ्री" (स्वतंत्र नहीं) श्रेणी में रखा जाना कोई औपचारिक लेबल नहीं, बल्कि एक यथार्थ का बयान है। उम्मीदवारों पर वीटो, चुनावी सीमाएं, मीडिया पर नियंत्रण और विरोध प्रदर्शनों का दमन, ये सभी मिलकर उस लोकतांत्रिक ढांचे को खोखला कर देते हैं जिसका दावा व्यवस्था करती है। मानवाधिकार संगठनों और अंतरराष्ट्रीय रिपोर्टों में लगातार सामने आ रहे दमन के उदाहरण इस सच्चाई को और पुष्ट करते हैं।

6.आगे का रास्ता: टकराव या परिवर्तन

ईरान के सामने अब दो ही रास्ते हैं। या तो सत्ता प्रतिष्ठान जनाक्रोश को और सख्ती से दबाने की कोशिश करेगा, जिसका परिणाम और अधिक अस्थिरता, हिंसा और अलगाव के रूप में सामने आएगा, या फिर वह यह स्वीकार करेगा कि स्थायित्व बंदूक और धर्मादेश से नहीं, बल्कि जनादेश से आता है। अंतरराष्ट्रीय समुदाय की भूमिका भी यहां महत्वपूर्ण है। केवल प्रतिबंधों पर निर्भर रहना समाधान नहीं है। लोकतांत्रिक दबाव, मानवाधिकारों पर स्पष्ट रुख और ईरानी जनता की वैध आकांक्षाओं का समर्थन ही दीर्घकालिक स्थिरता की दिशा में कदम हो सकता है। ईरान का संकट दरअसल एक चेतावनी है—कि जब कोई व्यवस्था जनता की आवाज को लगातार अनसुना करती है, तो अंततः वही आवाज सड़कों पर गूंजने लगती है। सुप्रसिद्ध मौलिक विचारक बजरंग मुनि जी अक्सर कहते हैं कि "साम्प्रदायिकता को कभी संतुष्ट नहीं किया जा सकता, उसे सिर्फ कुचला जा सकता है"। सवाल यह नहीं है कि बदलाव आएगा या नहीं, सवाल यह है कि वह शांतिपूर्ण होगा या फिर और कितनी निर्दोष जानों की कीमत पर।

साम, दाम, दंड, भेद और विश्व व्यवस्था अमेरिकी हस्तक्षेप की नई परिभाषा - बृजेश राय

आज संपूर्ण विश्व शक्ति और अर्थ के केंद्रीकृत ढांचे और असंगठित विश्व समूह की विकलांगता के मध्य टकराव देख रहा है। अमेरिका द्वारा वेनेजुएला के राष्ट्रपति निकोलस मादुरो को तानाशाह घोषित करना और लोकतंत्र की स्थापना के लिए सैन्य कार्रवाई के द्वारा उठा लेना कितना लोकतांत्रिक तरीका है? गंभीर प्रश्न यह खड़ा होता है कि क्या लोकतंत्र की स्थापना गैर-लोकतांत्रिक तरीके से संभव

है, या फिर इसके लिए जनमत संग्रह की आवश्यकता है? यूनाइटेड नेशंस जैसी संस्थाओं का मौन भीष्म पितामह के समान ही है जो अंततोगत्वा अधर्म के साथ ही दिखाई देता है। अपने निजी स्वार्थ की पूर्ति हेतु अमेरिकी समर्थन का ही परिणाम है कि अब ग्रीनलैंड पर भी संकट खड़ा हो गया है। भविष्य में यह प्रक्रिया यूक्रेन के राष्ट्रपति जेलेंस्की के साथ और सभी कमजोर देशों के साथ अपनाई जा सकती है। कुल मिलाकर यह प्रकृति के उस सिद्धांत को सही सिद्ध करता है जो 'सर्वाइवल ऑफ द फिटेस्ट' की बात करता है। यह धरती कमजोर और असहाय के लिए नहीं है, वह दूसरों की दया-दृष्टि पर ही निर्भर है। दुनिया को नियंत्रित करने के लिए साम, दाम, दंड, भेद—ये चार नीतियां अपनाई जाती हैं। अमेरिका ने दंड नीति का प्रयोग करते हुए वेनेजुएला के ऊपर कार्यवाही की है, किंतु भारत जैसे देश में 'भेद' नीति मुख्य हथियार है। दुनिया के जिन देशों में अमेरिका समर्थित सरकार नहीं होती, अमेरिका वहां पर किसी न न किसी प्रकार का आरोप लगाकर वहां की सरकार को हटा देता है। जिन देशों में अमेरिका समर्थित सरकार नहीं होती, वहां अमेरिका तीन तरीके से सरकार को अस्थिर करने अथवा हटाने का प्रयास करता है:

1.पहला तरीका है उस देश में सैन्य कार्यवाही करके। किंतु यह प्रक्रिया उन सभी देशों में संभव नहीं है जो परमाणु संपन्न हैं अथवा जिनकी सैन्य व्यवस्था बहुत अधिक मजबूत है।

2.दूसरा तरीका है ऐसे देशों पर आर्थिक प्रतिबंध लगाकर उसकी अर्थव्यवस्था को पूरी तरह से कमजोर कर देना, जिससे अराजकता और अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न हो और वहां की जनता सरकार को पलट दे। यह तरीका उन देशों में कारगर नहीं हो पाता जो आर्थिक महाशक्ति बन चुके हैं।

3.तीसरा तरीका है डीप स्टेट अर्थात किसी देश की आंतरिक राजनीतिक व्यवस्था को अस्थिर करना, देश में CIA के द्वारा झूठे नॉरेटिव सेट करना, उस देश के विपक्ष को फंडिंग करना और मजबूत करने का प्रयास करना।

अमेरिका भारत में पहले दो तरीकों में बिल्कुल असफल है क्योंकि भारत पर सैन्य कार्यवाही संभव नहीं है और आर्थिक प्रतिबंध से भारत को बहुत अधिक नुकसान नहीं पहुँचाया जा सकता, क्योंकि दुनिया के कई देश भारत के साथ व्यापार करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। किंतु अमेरिका भारत में तीसरे तरीके को अपनाता है जिसमें लगातार आंदोलनों को फंड करना, दो समुदायों के मध्य संघर्ष कराना, उस देश की चुनावी और लोकतांत्रिक पृष्ठभूमि पर प्रश्न खड़ा करना, मजहबी कट्टरपंथियों को लगातार मदद करना शामिल है। पिछले कुछ समय में भारत में CAA, NRC को लेकर किए गए आंदोलन, EVM पर प्रश्नचिह्न खड़ा करना, बांग्लादेश और मणिपुर को अस्थिर करना, पहलगाम हमले पर बार-बार झूठ बोलना, जातिवाद के नाम पर भारत को जातीय संघर्ष की तरफ ले जाना, लोगों का बड़े स्तर पर धर्म परिवर्तन कराना—यह सब अमेरिकी डीप स्टेट की सक्रियता का भी परिणाम हो सकता है। वैसे भी प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी की हत्या के लिए अमेरिका के द्वारा षड्यंत्र किया गया, यह स्पष्ट दिखता है कि अमेरिका भारत की वर्तमान सत्ता को बिल्कुल भी पसंद नहीं करता और अमेरिका भारत में सत्ता परिवर्तन करके एक ऐसी सरकार बनाना चाहता है जो अमेरिकी हितों की समर्थक हो।

गतांग से आगे...

जीवन पथ

आदित्य!

तो फिर इस समस्या का समाधान क्या हो सकता है मेरे भाई?

हमे विभिन्न देशों की सीमाओं में रहने वाले समाज में, व्यवस्था का ऐसा ढाँचा विकसित करना होगा कि व्यक्ति, शासन की गुलामी से मुक्त हो जाए। समाज में व्यक्ति परस्पर स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को मानने के लिए बाध्य होना चाहिए। हमे व्यवस्था का ढाँचा इस प्रकार स्थापित करना होगा कि जो कार्य जिस स्तर का है उसे उस स्तर पर ही व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह के संरक्षण में तन्त्र द्वारा करने का संवैधानिक अधिकार होना चाहिए। व्यक्ति यदि व्यवस्था (राज्य) में सहभागी बनेगा तो व्यवस्था के अधिष्ठान सत्ता केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हो पाएंगे। लेकिन क्या शक्ति का अकेन्द्रीयकरण समाज में अराजकता को बढावा नहीं देगा? .....आदित्य उससे पुनः प्रश्न करता है। हाँ ऐसा भी हो सकता है। ....विवेक उसके प्रश्न का उत्तर देते हुए कहता है-लेकिन स्थापित व्यवस्था द्वारा अपनी दोष पूर्ण नीतियों के कारण उत्पन्न की जा रही अराजकता से वह अराजकता बहतर कहलाएगी, जिसे वह कारक स्वयं उत्पन्न कर रहा होगा जिसके लिए वह व्यवस्था की गयी है। तो इसका लाभ क्या होगा? तब समाज में कहीं भी कभी कोई विध्वंसक क्रान्ति नहीं हो सकेगी। व्यवस्थापकों पर शोषण का दोष नहीं लग सकेगा। क्योंकि व्यवस्था का मूल कारक ही तो ऐसा कर रहा है। इस क्रिया के द्वारा समाज राजनीतिक अराजकता से मुक्त होगा। ऐसा कहकर वह क्षण भर के लिए चुप होता है और पुनः कहता है- लेकिन तुम्हारे प्रश्न पर यह मेरे द्वारा किया जाने वाला परिस्थितिजन्य प्रतिवाद है। यह कोई समुचित उत्तर नहीं है। क्योंकि जहाँ कोई व्यवस्था स्थापित होती है वहाँ अराजकता नहीं होती और जहाँ अराजकता होती है वहाँ

व्यवस्था नहीं होती। ये दोनों परिस्थितियाँ एक दूसरे के समानान्तर कभी नहीं चलती हैं! व्यवस्था की स्थापना करने के मूल कारणों में यह तथ्य, सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

और भारत में क्या स्थिति है? क्या तेरा ऐसा दिग्भ्रमित विचार तो नहीं है आदित्य कि भारत में व्यवस्था तथा अराजकता का मिश्रण है। यहाँ वर्तमान काल में दोनों ही परिस्थितियों का अस्तित्व जीवित है!

हाँ शायद यही मेरे प्रश्न का उत्तर है। ऐसा नहीं है। भारत में स्वतन्त्रता मिलने के बाद स्वराज्य के नाम पर स्थापित की गयी व्यवस्था केवल असफल सिद्ध नहीं हुई, बल्कि वह निष्फल सिद्ध हुई है। ....मेरे भाई पुनः प्रयास से असफलता को सफलता में बदला जा सकता है लेकिन आप निष्फल कारक से कभी कोई परिणाम प्राप्त नहीं कर सकते हैं। यह बिल्कुल वैसा ही तर्क है कि जैसे कोई व्यक्ति फल पानें की इच्छा में फलदार नस्ल का पौधा लगाता है लेकिन उम्र होने पर भी उस वृक्ष पर फल नहीं लगता है। ऐसी स्थिति में पौधे को परवस्त करके वृक्ष बनाने वाले व्यक्ति को क्या इस बात से सन्तुष्ट हो जाना चाहिए कि वह वृक्ष फल नहीं तो छाया दे रहा है। माना कि छाया प्राप्त करना भी व्यक्ति की आवश्यकता हो सकती है लेकिन इसे परिणाम तो नहीं कहा जा सकता है। फल की प्राप्ति के उद्देश्य से लगाए गए पौधे से प्राप्त छाया व लकडी या अन्य सामान केवल अनुषंगिक प्राप्तियां हैं, समुचित परिणाम नहीं है।

संस्थागत समाचार

ज्ञान यज्ञ परिवार की मासिक बैठक संपन्न ज्ञानोत्सव 2026 की तैयारियों पर हुआ विस्तृत विमर्श

रामानुजगंज नगर में लगभग छह दशकों से सामाजिक सरोकारों से जुड़ी संस्था ज्ञान यज्ञ परिवार की मासिक बैठक 3 जनवरी 2026 को सायं 6:00 बजे आमंत्रण धर्मशाला में संपन्न हुई। बैठक संस्था के संरक्षक कन्हैयालाल अग्रवाल एवं अध्यक्ष मोहन गुप्ता की उपस्थिति में आयोजित की गई। बैठक में संस्था से जुड़े विभिन्न उपक्रमों के सहयोगियों ने अपने-अपने मासिक कार्य-विवरण प्रस्तुत किए। ज्ञान यज्ञ परिवार एवं मां संस्थान द्वारा संचालित आमंत्रण धर्मशाला में आठ अतिरिक्त कमरों के नवनिर्माण कार्य की प्रगति, व्यय और सहयोगियों की जानकारी श्री अजय कुमार गुप्ता जी द्वारा प्रस्तुत की गई। वहीं लिटिल फ्लावर स्कूल की अर्द्धवार्षिक परीक्षाओं के संपन्न होने, आगामी वार्षिक कार्यक्रमों की तैयारी तथा अभिभावक शिक्षक सम्मेलन की सूचना श्री रवि रंजन पाल जी द्वारा दी गई। बैठक में यह भी बताया गया कि सुप्रसिद्ध मौलिक विचारक एवं संस्था के मार्गदर्शक आदरणीय बजरंग मुनि के जन्मदिवस अवसर पर 25 दिसंबर 2025 को ज्ञान तत्व दैनिक समाचार वेब पोर्टल की शुरुआत की गई थी। इस संबंध में ब्यूरो चीफ अशोक पुरी द्वारा सभी सदस्यों के समक्ष प्रगति आख्या प्रस्तुत की गई। इसी अवसर पर ज्ञान तत्व पाक्षिक पत्रिका के विशेषांक का विमोचन भी किया गया। रंगीन एवं उच्च गुणवत्ता वाले कागज पर प्रकाशित इस विशेषांक की सभी सदस्यों ने सराहना की तथा इसे प्रतिवर्ष प्रकाशित किए जाने पर सहमति जताई। ज्ञानोत्सव 2026 की तैयारी को लेकर आयोजित इस बैठक में सभी कार्यदायी समितियों का विस्तार किया गया और उनके दायित्वों का परिचय कराया गया। साथ ही यह निर्णय लिया गया कि ज्ञान तत्व पाक्षिक पत्रिका का विशेषांक ही ज्ञानोत्सव 2026का आधिकारिक आमंत्रण पत्र होगा। बैठक के दौरान संस्था से लंबे समय तक जुड़े रहे गांधीवादी विचारक एवं सामाजिक कार्यकर्ता संजय तांती के निधन पर शोक व्यक्त किया गया। संजय तांती का 20 दिसंबर 2025 को हृदयघात से निधन हो गया था। वे ज्ञानयज्ञ परिवार एवं मां संस्थान द्वारा प्रतिदिन आयोजित ज़ूम चर्चा कार्यक्रम में स्थायी विषय-विश्लेषक के रूप में सक्रिय भूमिका निभाते थे। कार्यालय प्रभारी ज्ञानेंद्र आर्य ने उनके व्यक्तित्व, सामाजिक योगदान और वैचारिक समन्वय की क्षमता पर प्रकाश डाला। उन्होंने बताया कि आनंद मार्ग की आध्यात्मिक परंपरा से जुड़े होने के बावजूद संजय तांती ने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के आदर्शों को अपने जीवन में व्यवहारिक रूप से अपनाया। संस्था ने उनके योगदान को सदैव स्मरणीय बताया। बैठक के अंत में संजय तांती जी को दो मिनट का मौन रखकर श्रद्धांजलि अर्पित की गई जिसके साथ मासिक बैठक संपन्न हुई।